॥ श्रीहरिः ॥ 364 ▲

परमार्थकी मन्दाकिनी

(कल्याण-कुञ्ज भाग-७)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

परमार्थकी मन्दाकिनी

[कल्याण कुंज भाग—७]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

यह 'शिव' विचार-तरंगोंका सातवाँ भाग है। ये तरंगें 'कल्याण' के आदिसम्पादक परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी लेखनीद्वारा तरंगित हुई हैं। वे प्रतिमास 'कल्याण' में 'कल्याण' शीर्षक अग्रलेखमें अपना नाम न देकर 'शिव' नामसे ही अपने विचार व्यक्त करते थे।

शिव-धाराकी तरंगें दैहिक, दैविक एवं भौतिक संतापसे संतप्त मानवको केवल शीतलता ही प्रदान नहीं करती हैं, अपितु अवगाहन करनेवालेको परमार्थके उच्च शिखरपर आरूढ़ होनेमें सहायता करती हैं। संत-हृदयकी पवित्रधारा सुखशान्तिका उद्गम है। अतएव यह 'मन्दाकिनी' सहज ही दुःखी मानवको परमानन्द एवं दिव्यभावतक प्राप्त करा सकती है। सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये।

श्रीराधाष्टमी, सं० २०३३ वि० — **प्रकाशक**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

परमार्थकी मन्दाकिनी

संतोषी परम सुखी

याद रखो—मनुष्यकी एक बड़ी कमजोरी है—उसका चिरस्थायी 'असंतोष'। इसीसे वह सदा दुःखी रहता है। तृष्णाकी कोई सीमा नहीं है; जितना मिले, उतनी ही तृष्णा बढ़ती है। भोगोंकी प्राप्तिसे तृष्णाका अन्त नहीं होता—वरं ज्यों-ज्यों भोग प्राप्त होते हैं, त्यों-ही-त्यों तृष्णाका दायरा भी बढ़ता ही जाता है। भोग भोगनेकी शक्ति चाहे नष्ट हो जाय, परंतु तृष्णा नहीं नष्ट होती। तृष्णा बड़े-से-बड़े धनवान्, ऐश्वर्यवान्‌को भी सदा दरिद्र बनाये रखती है; उसमें कभी जीर्णता नहीं आती, उसका तारुण्य सदा ही बना रहता है।

याद रखो—जिसका मन प्रत्येक परिस्थितिमें संतुष्ट है, वही परम सुखी है। वस्तुतः संतोष ही वह परम धन है, जिसे पाकर मनुष्य सदा धनी बना रहता है; कोई भी अवस्था उसे दीन-दरिद्र नहीं बना सकती। संतोषसे प्राप्त होनेवाला जो महान् पद है, वह बड़े-से-बड़े सम्राट्‌के पदसे भी ऊँचा और महान् है।

याद रखो—संतोषसम्पन्न पुरुष ही वास्तविक साधु है। घर छोड़नेपर भी जिसको संतोष नहीं है, वह कभी साधु नहीं हो सकता; वह तो दिन-रात असंतोषकी आगमें जलता रहता है। संतोष ही वह परम शीतल पदार्थ है, जो जलते जीवनको सुशीतल बना देता है। संतोष ही जीवनके अन्धकारसे अभिशप्त अंगोंको परमोज्ज्वल बनाता है।

याद रखो—जिसको संतोष नहीं है, उसकी वृत्ति कभी एकाग्र नहीं हो सकती; वह सदा ही क्षिप्त और चंचल बनी रहती है। असंतोष मनुष्यको चोर, ठग, डाकू और परहितहरण करनेवाला असुर बना देता है। असंतोषसे ही द्वेष, क्रोध, वैर और हिंसाको प्रोत्साहन मिलता है। शील, शान्ति, प्रेम, सेवा आदि सद्गुण असंतोषी मनुष्यके जीवनमें कभी नहीं आते। यदि इनमेंसे कोई कुछ क्षणोंके लिये आता है तो असंतोषकी आगसे झुलसकर नष्ट हो जाता है।

याद रखो—संतोष होता है जगत्‌की अनित्यता, दुःखमयता, असद्रूपताके निश्चयसे या श्रीभगवान्‌के मंगल-विधानपर परम विश्वास होनेपर ही। जगत्‌की कोई भी स्थिति वास्तवमें या तो मायामात्र है—कुछ है नहीं या विविध रसमयी भगवान्‌की लीला है। माया है तो असंतोषका कोई कारण नहीं है; लीला है तो प्रत्येक लीलामें लीलामयके मधुर-मंगल दर्शनका परमानन्द है। उसीमें चित्त रम जाता है।

याद रखो—जो लोग असंतोषकी आगमें जलते रहते हैं, वे ही दूसरोंके हृदयमें असंतोषकी आग सुलगाकर उन्हें संतप्त कर देते हैं। वे कहते हैं कि 'असंतोषके बिना उन्नति नहीं होती। उन्नतिकामीको असंतोषी होना चाहिये।' पर यह उनकी असंतोष-वृत्तिसे उदित विकृत बुद्धिका विपरीत दर्शनमात्र है। बुद्धि जब तमसाच्छन्न होकर विकृत हो जाती है, तब मनुष्यको सब विपरीत दिखायी देता है। इसलिये वह सहज ही बुरेको भला मानकर स्वयं उसीको ग्रहण करता है और वही दूसरोंको भी समझा देना चाहता है।

याद रखो—संतुष्ट मनवाले पुरुषके अंदरसे जो सहज ही एक आनन्दकी लहर बाहर निकलती रहती है; वह आस-पासके

लोगोंको प्रभावित कर उन्हें भी आनन्द प्रदान करती है। संतोषी पुरुष ही शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति आदि द्वन्द्वोंमें समभाव रखकर भगवान्‌का प्रिय भक्त हो सकता है और वही अपने शान्त जीवनके द्वारा भगवान्‌की यथार्थ पूजा कर सकता है।

याद रखो—अकर्मण्यता, आलस्य, प्रमाद आदिका नाम संतोष नहीं है। संतोषी पुरुष ही वस्तुतः व्यवस्थित चित्तसे सत्कर्म कर सकता है; क्योंकि उसका चित्त शान्त और उसकी बुद्धि शुद्ध, विवेकवती एवं यथार्थ निश्चय करनेवाली होती है।

अपने 'स्व' को विस्तृत करें

याद रखो—संसारमें जितने भी जड-चेतन जीव हैं—सभीमें भगवान् भरे हैं, सभी भगवान्‌के ही रूप हैं या सभी आत्मरूप हैं—यह समझकर जिन प्राणियोंसे भी सम्पर्क प्राप्त हो, उनके रूप तथा वेशके अनुसार मन, वाणी, शरीरसे दान, सम्मान देकर उनका पूजन या उन्हें सुख-दान करना चाहिये। किसी भी कार्यकी बात सोचते तथा किसी भी कार्यको करते समय यह पूरा ध्यान रखना चाहिये कि इससे किसी भी प्राणीका किसी प्रकारका कोई अहित तो नहीं होगा और केवल मेरा ही नहीं, दूसरोंका भी इससे हित होगा या नहीं।

याद रखो—'स्व' जितना ही सीमित होता है, उतना ही 'स्वार्थ' परिणाममें हानिकारक, अशान्तिदायक, दुःखप्रद और गंदा होता है। 'स्व' जितना ही बृहद्—विशाल होता है, उतना ही 'स्वार्थ' भी पवित्र परिणाममें लाभकारक, शान्तिदायक तथा सुखप्रद होता है। जो केवल अपने व्यक्तिगत अथवा कुटुम्बतकके

लाभके लिये ही सोचा करता है—इसीको स्वार्थ समझता है, वह व्यक्तिगत लाभके लिये चराचर जीवों तथा विश्वमानवोंकी तो कभी बात सोचता ही नहीं, देशको भी भूल जाता है। उसकी ईश्वरभक्ति, देशभक्ति, जनसेवा—सीमित स्वार्थके निम्नस्तरमें उतरकर ईश्वरद्रोह और देशद्रोह तथा जनसंतापतकमें परिणत हो जाती है। ऐसा 'ईश्वरभक्त', 'देशभक्त' तथा 'सेवक' कहलानेवाला वास्तवमें साधारण मनुष्यकी अपेक्षा भी बहुत अधिक खतरनाक होता है—समाजके लिये, देशके लिये, विश्वके लिये; क्योंकि वह अपने नीच स्वार्थभरे आचरणसे ईश्वर, देश तथा सेवाके पवित्र नामको बदनाम करता है, उनके स्वरूपको लोकदृष्टिमें गिराता है और आदर्शको नष्ट करता है।

याद रखो—सेवक, देशभक्त और ईश्वरभक्त पदका अधिकारी वही होता है, जिसका 'स्व' छोटी सीमासे निकलकर उत्तरोत्तर बड़ी-से-बड़ी सीमामें पहुँचता हुआ अन्तमें असीममें जा मिलता है। जिसका 'स्व' सर्वभूतमय है, वही सबका सच्चा सेवक बन सकता है, जिसका 'स्व' देशके 'स्व' में मिलकर 'देशात्मबोध' की अनुभूति करा देता है, वही 'देशभक्त' होता है और जिसका 'स्व' असीम अनन्त सर्वात्मा भगवान्‌के साथ एकात्मताको प्राप्त-कर सर्वात्मरूप हो जाता है, जो प्रत्येक चराचर प्राणीमें सदा-सर्वदा भगवान्‌के ही मंगलमय दर्शन करता है, वही ईश्वरभक्त है। ऐसे लोगोंके जीवनमें उत्तरोत्तर 'त्याग' की वृद्धि होकर वह सदा असीमकी ओर अग्रसर होता रहता है। जितना-जितना त्याग बढ़ता है, उतना-उतना 'स्व' का विस्तार तथा 'स्वार्थ' पवित्र होता है।

याद रखो—जो इन्द्रिय-भोगासक्त है, जो नाम-रूपके मिथ्या सुखका आकांक्षी है, जो प्रत्येक कार्यका भौतिक भोगफल चाहता

है, वह कभी यथार्थ त्याग नहीं कर सकता। उसमें कहीं त्याग दिखायी देगा भी तो वह वस्तुतः भोगके साधनरूपमें होगा; विशुद्ध त्यागका उदय उसमें नहीं होगा और त्यागके बिना कभी न सच्ची सेवा हो सकती है, न भक्ति और न प्रेम ही।

याद रखो—निज भोगसुखके लिये जो विचार तथा कर्म होते हैं, उनमें पर-हित तथा पर-सुखका खयाल नहीं रहता, वरं अवहेलनासे और नीच स्वार्थवश तमसाच्छन्न विपरीत बुद्धि हो जानेके कारण आगे चलकर दूसरोंके दुःख तथा अहितकी चेष्टा तथा प्रयत्न भी होने लगते हैं और यह निश्चित है कि जिस कार्यसे दूसरोंका परिणाममें असुख और अहित होता है, उससे हमारा परिणाममें कभी हित हो ही नहीं सकता। अतएव परिणाममें अपना सुख तथा हित चाहनेवाले बुद्धिमान् पुरुषका यह कर्तव्य होता है कि वह अपने 'स्व' को सीमित न रखकर विस्तृत करे और ऐसे ही विचार तथा कर्म करे, जिनसे परिणाममें विश्वके प्राणिमात्रको सुख तथा उनका हित-साधन हो।

मान-अपमानमें सम रहें

याद रखो—मान-अपमान 'रूप' का या 'शरीर' का होता है और स्तुति-निन्दा 'नाम' की होती है; और ये रूप तथा नाम दोनों ही तुम्हारे स्वरूप नहीं हैं। देहका निर्माण माताके उदरमें गर्भकालमें होता है और नाम जन्मके बाद रखा जाता है। नाम बदले भी जाते हैं। अतएव ये रूप और नाम आत्माके नहीं हैं। तुम आत्मा हो; इस देहके निर्माणके पहले भी आत्मारूपमें तुम थे, देहावसानके बाद भी रहोगे। आत्माका मान-अपमान और स्तुति-निन्दा कोई कर नहीं सकता। अतएव मान-अपमान तथा स्तुति-निन्दासे तुम न हर्षित होओ, न उद्विग्न। दोनोंको समान समझकर उन्हें ग्रहण मत करो।

याद रखो—सत्कार-मान और बड़ाई-स्तुति जितने प्रिय लगते हैं, उतने ही असत्कार-अपमान और निन्दा-गाली अप्रिय लगते हैं और उसीके अनुसार राग-द्वेष होता है। राग-द्वेषका परिणाम है—आध्यात्मिक दैवी सम्पदाका नाश और भौतिक आसुरी सम्पदाका विकास। जहाँ आसुरी सम्पदाका सृजन-संरक्षण-संवर्धन होने लगता है, वहाँ भाँति-भाँतिके दुष्कर्म, दुर्विचार, पाप, दुःख, क्लेश, संताप, अशान्ति, यन्त्रणा आदिका होना-बढ़ना अनिवार्य होता है। यों मानव-जीवन दुःखों तथा नरकोंका अमोघ साधन बन जाता है। तुम जरा ध्यान देकर सोचोगे तो यह प्रत्यक्ष दिखलायी देगा कि तुम न देह हो, न नाम हो और यहाँके मान-अपमान तथा स्तुति-निन्दा ही नहीं, लाभ-हानि, जय-पराजय, शुभ-अशुभ, प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, मित्र-शत्रु, जीवन-मरण आदि सभी द्वन्द्व केवल देह-नाम या नाम-रूपसे ही सम्बन्ध रखते हैं। तुम इन द्वन्द्वोंको भगवान्‌की माया मान लो या उनका लीलानाट्य बस, तुम इस द्वन्द्वात्मक स्थितिसे ऊपर उठ जाओगे।

याद रखो—यह द्वन्द्व ही जगत् है—माया है और द्वन्द्वातीत या समस्थिति ही ब्रह्म है। द्वन्द्व परिवर्तनशील है, विनाशी है और सम ब्रह्म नित्य अविनाशी है। यही तुम्हारा स्वरूप है। स्वरूप होनेके कारण सहज ही अनुभवगम्य है, तथापि प्रकृतिस्थ अवस्थामें सत्यकी अनुभूति छिपी रह जाती है। अतएव अभी इस प्रकार द्वन्द्व-मोहसे मुक्त रहनेकी साधना करो; न मान-बड़ाईमें हर्षित होओ, न अपमान-निन्दामें दुःखित। इसी प्रकार प्रत्येक द्वन्द्वमें समत्व रखनेकी चेष्टा करो।

याद रखो—व्यवहारमें—शरीरके विभिन्न अंगोंके कार्योंकी भिन्नता रहनेपर आत्मरूपसे जैसे उनमें कोई भेद नहीं है, वैसे

ही—व्यावहारिक परिस्थितिके भेदसे भेद प्रतीत हो, पर अन्तस्में किसी भी द्वन्द्वमें अनुकूलता-प्रतिकूलताका बोध नहीं होना चाहिये।

याद रखो—देहमें और नाममें अहंबुद्धि होनेसे ही—जो सर्वथा मिथ्या तथा अयुक्तियुक्त है—ममता-आसक्तिका प्रसार होता है और अनुकूलता-प्रतिकूलताकी अनुभूति होती है। अतएव अपनेको सदा-सर्वदा आत्मामें स्थित आत्मरूप देखनेकी चेष्टा करो और मिथ्या नामरूपको सर्वथा कल्पित मानकर अपनेको सदा उनसे पृथक् देखो।

याद रखो—जितने भी भेद हैं—सब नाम-रूपको लेकर हैं। नाम-रूप व्यवहारके लिये हैं। इनसे सर्वथा भेदरहित आत्माका सम-स्वरूप नहीं बदलता। तुम सम आत्मामें, जो तुम्हारा स्वरूप है—स्थित होकर व्यावहारिक जगत्में यथायोग्य व्यवहार करो। तुम्हारे व्यवहारमें विषमता रहेगी, पर तुम आत्म-स्वरूपमें नित्य निर्द्वन्द्व—सर्वदा-सर्वथा सम रहोगे। व्यवहारकी लहरियाँ तुम्हारे प्रशान्त स्वरूपमें जरा भी क्षोभ उत्पन्न न कर सकेंगी, वरं वे तुम आत्म-स्वरूप प्रशान्त महासागरकी शोभा होंगी।

एकमात्र भगवान्में ही राग करें

याद रखो—राग और द्वेष मनुष्यके बहुत बड़े शत्रु हैं, जो प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें स्थित रहकर तुम्हारे जीवनसंगी बने तुम्हारे परम अर्थको निरन्तर लूट रहे हैं। राग-द्वेषसे ही काम-क्रोधकी उत्पत्ति होती है, जो समस्त पापोंके मूल हैं।

याद रखो—जिसके मनमें भोगकामना है, वह कभी सच्चे अर्थमें सुखी नहीं हो सकता। कामनाकी पूर्तिमें एक बार सुखकी लहर-सी आती है, पर कामना ऐसी अग्नि है, जो प्रत्येक

अनुकूल भोगको आहुति बनाकर अपना कलेवर बढ़ाती रहती है। जितनी-जितनी कामनाकी पूर्ति होती है,उतनी-उतनी कामना अधिक बढ़ती है। कामना अभावकी स्थितिका अनुभव कराती है और जहाँ अभाव है, वहीं प्रतिकूलता है एवं प्रतिकूलता ही दुःख है। अतएव कामना कभी पूर्ण होती ही नहीं और इसलिये मनुष्य कभी दुःखसे मुक्त हो ही नहीं सकता। कामना बड़े-से-बड़े समृद्धिमान् वैभवशाली पुरुषको भी दीन बना देती है, कामना बड़े-से-बड़े विचारक तथा बुद्धिमान् पुरुषके मनमें भी अशान्तिका तूफान खड़ा कर देती है। कामनाकी अपूर्तिमें क्षोभ तथा क्रोध होता है, जो मनुष्यको विवेकशून्य बनाकर उसको सर्वनाशके पथपर तेजीसे आगे बढ़ाता है। इसलिये इन काम-क्रोधके मूल राग-द्वेषका त्याग करो।

याद रखो—यदि राग-द्वेषका त्याग न हो तो उनके विषयोंको तो जरूर बदल डालो। राग करो—श्रीभगवान्‌में; उनके स्वरूप-गुण-लीलामें, उनके नाममें और उनमें आत्मसमर्पित उनके भक्तोंमें, द्वेष करो—अपने दुर्गुणोंमें, दुर्विचारोंमें, बुरे कामोंमें, पापोंमें, अन्तःकरणकी बुरी वृत्तियोंमें, भोगासक्तिमें और विषय-सुखकी कामनामें। बस, फिर ये राग-द्वेष ही तुम्हारे परम अर्थके—आध्यात्मिक सम्पत्तिके रक्षक और पोषक बन जायँगे। अग्निसे घरमें आग लगकर सब कुछ भस्म हो जाता है और अग्निसे ही यज्ञकर्म सम्पन्न होनेपर सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

याद रखो—भगवान्‌में राग होनेपर भगवद्विरोधी अपने तन-मनके कार्योंमें द्वेष होगा ही। जिनमें द्वेष होता है, वे बुरे लगते हैं और मनुष्य उनका विनाश चाहता है। अतएव भगवान्‌में उत्पन्न राग स्वभावतः ही शरीर तथा मनसे होनेवाले दुष्कर्म तथा

दुष्ट विचारोंका नाश कर देता है। भगवान्‌में राग ही परम दुर्लभ भगवत्प्रेम है और पापमें द्वेष ही सच्चा वैराग्ययुक्त परम साधन है।

याद रखो—भगवान्‌में तुम्हारा राग बढ़े, इसके लिये भगवान्‌के स्वरूप, गुण, चरित्र, लीला आदिका बार-बार श्रवण करो, कीर्तन करो, चिन्तन करो, मनन करो और इसमें गौरव, आनन्द तथा शान्तिका अनुभव करो। भगवान्‌के अतुलनीय सुन्दर मधुर परम पावन नाम-रूप भगवान्‌के अप्रतिम अनन्त ऐश्वर्य-गुण, भगवान्‌के चिदानन्दमय अनुपम सौन्दर्य-माधुर्य, भगवान्‌के सर्व विलक्षण तत्त्व-स्वरूप आदिके श्रवण-कीर्तन-मननसे जितना ही मन उनकी ओर आकर्षित होगा, जितनी ही उनमें रुचि बढ़ेगी, उतना ही उनमें राग बढ़ेगा, उतनी ही उनमें प्रीति बढ़ेगी, उतनी ही उत्तरोत्तर उनके प्रति आत्मसमर्पणकी अधिकाधिक लालसा बढ़ेगी।

याद रखो—भगवान्‌में पूर्ण आत्मसमर्पणकी लालसाका उदय बहुत ऊँची साधनाका फल है एवं स्वयं परम तथा चरम साधन है, जो भगवत्प्रेमरूप सुदुर्लभ वस्तु प्रदान कराकर भगवान्‌का अभिन्नस्वरूप—निजजन बना देता है।

याद रखो—पूर्ण आत्मसमर्पणकी लालसा जाग्रत् होनेपर उसमें बड़ी-से-बड़ी भोगकामना तो रहती ही नहीं, मोक्षकामना भी छिप जाती है। एकमात्र भगवान्‌के परम पावन सुरेन्द्र-मुनीन्द्र वन्दित चरणकमलोंकी शरण ही उसकी सारी कामना, वासना, इच्छा, अपेक्षा, स्पृहा, लालसा आदिका विषय हो जाती है।

सभी नाम-रूपोंमें भगवान्‌को अभिव्यक्त देखते हुए व्यवहार करें

याद रखो—तुम सबसे पहले स्वरूपतः नित्य एक आत्मा हो, फिर मनुष्य हो, फिर भारतवासी हो, फिर हिंदू हो, फिर अमुक प्रदेशवासी हो, फिर अमुक परिवारके सदस्य हो, फिर माता-पिता, पत्नी-पति, पुत्र-पौत्र, स्वामी-सेवक आदि कुछ हो।

याद रखो—आत्माके अतिरिक्त ये सभी स्वरूप तुम्हारे यथार्थ स्वरूप नहीं हैं; ये तो अनित्य संसारके अनित्य क्षेत्रोंमें कामचलाऊ नाम-रूप हैं। इन सबमें यथायोग्य व्यवहार करके जीवन-यात्रा चलानी है। पर यह सदा ध्यान रखना है कि अपने इन विभिन्न नाम-रूपोंके अभिमानमें मनुष्येतर प्राणियोंको, भारतके अतिरिक्त अन्यान्य देशवासियोंको, हिंदूके अतिरिक्त अन्यान्य धर्म-जातिवालोंको, अपने प्रदेशके अतिरिक्त अन्यान्य प्रदेशवासियोंको, अपनी भाषाके अतिरिक्त अन्यान्य भाषा-भाषियोंको, अपने नगर-गाँवके अतिरिक्त अन्यान्य स्थान-निवासियोंको, अपने परिवारके अतिरिक्त अन्यान्य परिवारोंके सदस्योंको, अपने सिवा अन्य सबको तुम 'पर' कहीं न समझ बैठो और कहीं अपने कल्याणके मोहमें दूसरोंका अकल्याण चाहने और करने न लग जाओ।

याद रखो—किसी भी दूसरेका अकल्याण या अहित अपना ही अकल्याण या अहित है—वैसे ही, जैसे अपने एक ही शरीरके विभिन्न अंग अपना ही शरीर हैं। किसी भी अंगपर चोट पहुँचाना अपने ही शरीरको चोट पहुँचाना है और कहीं भी चोट लगनेपर उसके दर्दका अनुभव अपनेको ही होता है। इसी प्रकार एक ही आत्माके ये सब विभिन्न नाम-रूप हैं। इनमें कोई भी कभी भी न तो 'पर' (दूसरा) है और न दूसरा हो सकता है।

याद रखो—इससे भी महत्त्वकी बात यह है कि आत्मारूपमें स्वयं श्रीभगवान् ही प्रकाशित हैं। साथ ही चेतन आत्माके अतिरिक्त जड प्रकृतिके रूपमें भी उन्हींकी मंगलमयी लीला प्रकाशित है, जो उन लीलामयसे सदा-सर्वथा अभिन्न है। अतएव जड-चेतन जो कुछ भी है—सभी श्रीभगवान् ही हैं। वे ही लीलामय विभिन्न नाम-रूप धारण करके लीला कर रहे हैं। यदि तुम भक्त हो—या बनना चाहते हो अथवा एकमात्र सत्यके अन्वेषक हो तो तुम्हें सदा-सर्वदा सभी नाम-रूपोंमें एकमात्र भगवान्‌को ही प्रकट समझकर सदा सभीका हित, सभीका कल्याण चाहना-करना चाहिये।

याद रखो—किसी भी प्राणीका असत्कार करना, किसीका अहित करना, किसीको भी दुःख पहुँचाना अपने परमाराध्य भगवान्‌का ही असत्कार-अहित करना है और भगवान्‌को ही दुःख पहुँचाना है तथा यह महापाप है; अतएव इससे सदा बचे रहो—सदा सावधानीके साथ इस प्रकारकी कोई भी चेष्टा मत करो।

याद रखो—जो समस्त नाम-रूपोंवाले प्राणियोंमें भगवान्‌को देखकर सदा-सर्वदा सबका सम्मान करता है, सबकी सेवा करता है, सबको सुख पहुँचाता है और सबका हित करता है, उसके द्वारा सदा भगवान् ही सम्मानित, सेवित, सुखी होते हैं और हित प्राप्त करते हैं। वह सदा भगवान्‌की ही पूजा करता है। भगवान् उसकी इस नित्य-पूजासे परम प्रसन्न होकर उसे अपना स्वरूप दान देते हैं।

याद रखो—यदि सबमें अपने आत्माको समझकर सबका सम्मान, सेवा, हित करते हो, सबको सुख पहुँचाते हो, तब तो सदा ही आत्मसंतुष्टि प्राप्त होती रहती है और सदा ही आत्मरमण करते हुए तुम अपने स्वरूपमें स्थित रहते हो।

सब कुछ प्रभु हैं और उनकी लीला है

याद रखो—सर्वत्र प्रभुकी ही सत्ता, शक्ति, विभूति फैली हुई है—सब प्रभुकी ही अभिव्यक्ति है। अतएव ऐसा अनुभव करो कि तुम्हारे अंदर नित्य-निरन्तर प्रभुकी सत्ता, शक्ति और विभूति भरी है। सदा इस सत्यके दर्शन करो।

याद रखो—तुम्हारे जीवनमें सदा-सर्वदा निरन्तर प्रभुका अत्यन्त मधुर संगीत बज रहा है; ऐसा अनुभव करनेपर तुम किसी भी स्थितिमें रूक्षता तथा भयका अनुभव नहीं करोगे।

याद रखो—प्रभुके साथ नित्य सत्य सम्बन्धकी अनुभूति हो जानेपर अहंता तथा ममताके—'मैं' तथा 'मेरे' के सारे पदार्थ बनें या बिगड़ें, जीयें या मरें, उससे तुम्हारा न कुछ बिगड़ेगा, न तुम्हें सुख-दुःख ही होंगे। तुम नित्य हर हालतमें परमानन्दमें निमग्न रहोगे।

याद रखो—यहाँ जो कुछ है और जो कुछ होता है, सब प्रभु हैं और प्रभुकी लीला है। प्रभु स्वयं ही सारी लीला बनकर लीलायमान होते हैं। अतएव लीलामयमें और उनकी लीलामें कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं। वे ही निरन्तर तुम्हारे भीतर-बाहर बसे हुए लीला करते रहते हैं।

याद रखो—जो नित्य-निरन्तर बाहर और भीतर केवल उन प्रभुको ही देखता है, वह वास्तवमें उन्हींमें निवास करता है और भगवान् तो उसमें हैं ही। वे सदा हैं, सर्वथा हैं, सर्वत्र हैं। वे ही अत्यन्त दूर हैं और वे ही अत्यन्त समीप हैं। उनके सिवा कुछ भी अन्य है नहीं।

याद रखो—मिथ्या मोह तथा भ्रमसे ही प्राकृतिक पदार्थोंमें तुम उनकी सत्ता, शक्ति तथा विभूति मानकर उनका सेवन करते

हो और इसीसे बार-बार घोर अशान्तिका अनुभव करते हो। इसी भ्रमके कारण तुम शोक, विषादका अनुभव करते हो और इसी भ्रमसे तुम दिन-रात, अहंता-ममता, वासना-कामना, आसक्ति-लोभ तथा क्रोध-हिंसाकी अग्निमें अनवरत जलते रहते हो।

याद रखो—एक प्रभुसत्ता ही नित्य सत्य है, प्रभु ही सत्यस्वरूप हैं। उन्हींमें सदा-सर्वदा अपनेको मिलाये रखना चाहिये। उन्हींका सदा आश्रय करना चाहिये। वे ही सारी शान्ति, आनन्द तथा आत्यन्तिक सुखके एकमात्र मूल स्रोत हैं, वे ही निर्मल शान्ति-सुखके अनन्त समुद्र हैं। तुम अपने जीवनमें नित्य उन्हीं आत्यन्तिक शान्ति तथा आत्यन्तिक सुखके स्वरूप भगवान्से चिपटे रहो। एक क्षणके लिये भी उनसे विलग होनेकी कल्पनातक मत करो।

याद रखो—उन प्रभुको कहींसे आना नहीं है। वे सदा-सर्वत्र वर्तमान हैं। ऐसा कोई देश-काल-वस्तु है ही नहीं, जिसमें वे न हों। उन्हींकी सत्तासे सबकी सत्ता है, उन्हींकी शक्तिसे सब शक्तिमान् हैं, उन्हींकी विभूतिसे सबमें विभूति है।

याद रखो—प्राकृतिक पदार्थ बनने तथा नष्ट होनेवाले हैं। इनका सृजन-संहार होता रहता है। प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तु अनित्य और अपूर्ण है; परन्तु भगवान् अनादि, अनन्त, नित्य वर्तमान हैं। वे सदा स्वरूपसे ही परिपूर्ण हैं। तुम उन्हींका आश्रय करो। उन्हींकी सत्तामें अपनी सत्ताको मिला दो।

सच्चे सुखकी प्राप्तिका उपाय

याद रखो—जहाँ सांसारिक भोगोंकी नयी-नयी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं और आवश्यकताएँ बढ़ती रहती हैं, वहाँ सहज ही अभावका अनुभव होता रहता है। कैसी भी महान् सम्पन्न स्थिति हो, कभी संतोष नहीं होता और असंतोष ही दुःखका हेतु है।

याद रखो—साधारण, सुगम तथा सादे जीवन-निर्वाहके लिये मनुष्यकी आवश्यकता बहुत अधिक नहीं होती और उस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये इच्छा तथा विधिसंगत कर्म भी करना अनुचित नहीं है—उसमें आपत्ति नहीं है। इस आवश्यकताकी पूर्तिमें बहुत कठिनता भी नहीं होती। व्यसन तथा तृष्णाजनित बढ़ी हुई इच्छा तथा आवश्यकताओंमें जो निरन्तर एक अभावका अनुभव होता रहता है, वह भी इसमें नहीं होता। इसलिये सहज ही जीवनमें सुख रहता है।

याद रखो—सुख किसी सम्पत्ति या स्थितिमें नहीं है; सुख है अभावके अनुभवसे रहित संतोषकी वृत्तिमें। यह वृत्ति किसी बाह्य अवस्थाविशेषकी अपेक्षा नहीं करती। प्रत्येक परिस्थितिमें मनुष्य संतुष्ट रह सकता है—तृष्णाजनित अभाव-आवश्यकताकी अग्निके बुझ जानेपर तथा परम सुहृद् भगवान्‌के मंगलमय विधानपर विश्वास करनेपर।

याद रखो—अपनी सहज सुखकी स्थितिसे, प्रत्येक परिस्थितिको मंगलमय मानने-जाननेकी वृत्तिसे और यथालाभ संतुष्ट रहनेके स्वभावसे विचलित होकर जब मनुष्य विविध भोगोंकी वासना—तृष्णाके जालमें फँस जाता है, जब उसके हृदयमें दुष्पूरणीय तथा उत्तरोत्तर बढ़नेवाली कामनाकी आग जल उठती है, तब किसी

भी स्थितिमें वह संतुष्ट नहीं होता—अतएव कभी भी वह दुःखसे मुक्त नहीं हो सकता। उसका संताप—दुःख उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। इस प्रकार मनुष्य स्वयं ही अनावश्यक भोग-कामनाओंको हृदयमें जगाकर दुःखोंको बुला लेता है और जीवनके अन्तिम श्वासतक—मृत्युके बिन्दुतक असंख्य दुःखोंसे घिरा रहता है। उसका मन कभी चिन्तारहित, प्रशान्त और संतापशून्य होकर सुखके दर्शन नहीं कर पाता।

याद रखो—यहाँ जो भोगोंके अभावकी आगमें जलता हुआ मरता है, मरनेके बाद भी लोकान्तरमें उसे उसी आगमें जलना पड़ता है। यहाँकी कामना-वासना उसके अंदर वहाँ भी ज्यों-की-त्यों वर्तमान रहकर उसे संतप्त करती रहती है।

याद रखो—इसके विपरीत जो अनावश्यक भोगकामनाओंसे मुक्त है, जिसका मन हर हालतमें संतुष्ट है, जो कभी भी अभावका अनुभव नहीं करता और सदा सहज ही परम सुहृद् भगवान्के मंगलमय विधानके अनुसार प्राप्त प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्की कृपाके दर्शन करता रहता है, वह मृत्युके समय भोगोंसे सर्वथा विरत और भगवान्की मंगलमयी स्मृतिमें संलग्न रहता है। उसका मन भोगोंके अभावका अनुभव न करके भगवान्के परम सौहार्दका अनुभव करके आह्लादसे भरा रहता है। वह अत्यन्त शान्ति-सुखके साथ देह-त्याग करके जाता है और भगवान्की स्मृतिमें ही मृत्यु होनेके कारण मृत्युके अनन्तर वह निश्चितरूपसे निस्संदेह भगवान्को ही प्राप्त होता है—**'मामेवैष्यस्यसंशयम्।'**

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य—भगवत्प्राप्ति

याद रखो—उपनिषद्‌में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोड़े, मनको लगाम, बुद्धिको सारथी, जीवात्माको रथी और विषयोंको रथके चलनेके मार्गकी उपमा देकर यह कहा गया है कि जैसे सारथी विवेकयुक्त, कहाँ जाना है यह जाननेवाला तथा स्मरण रखनेवाला, घोड़ोंकी लगाम थामकर उन्हें चलानेमें चतुर एवं दुर्धर्ष तथा बलवान् घोड़ोंको नियन्त्रणमें रखनेकी शक्तिवाला होता है तो वह घोड़ोंके अधीन न होकर लगामके द्वारा घोड़ोंको अपने वशमें रखकर मालिकको उसके इष्ट-स्थानपर शीघ्र सुखसे पहुँचा देता है; वैसे ही जिस पुरुषकी बुद्धि विवेकवती, कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे सम्पन्न, मनको तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेमें समर्थ, सावधान, बलवान्, निश्चयात्मिका तथा ईश्वराभिमुखी होती है, वह पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको संयममें रखकर इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले प्रत्येक आचारको शास्त्रानुकूल भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे सम्पन्न करके अपने-आपको भगवान्‌के धाममें ले जाता है।

याद रखो—जिसकी बुद्धि अनिश्चयात्मिका, अविवेकवती, मनको अपने अधीन रखनेमें असमर्थ, इन्द्रियोंको मनके सहारे इच्छानुसार सत्पथपर—भगवान्‌के मार्गपर चलानेमें अक्षम तथा बहुशाखावाली होती है, उसका असंयत मन उच्छृंखल तथा बहिर्मुखी बलवान् इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है। इन्द्रियाँ सदा-सर्वदा दुराचार, दुष्कर्ममें लगी रहती हैं। फलतः बुद्धि और भी कुविचार तथा अविचारसे युक्त हो जाती है एवं वह पुरुष मानव-जीवनके परम तथा चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे वंचित तो

रहता ही है, बुरे कर्मोंके फलस्वरूप सदा संसारचक्रमें भटकता रहता है—बार-बार आसुरी योनियोंमें जाता है और नरकोंकी असह्य यातना भोगनेको बाध्य होता है। इस प्रकार उसका घोर पतन हो जाता है—वैसे ही जैसे मूर्ख तथा अविवेकी सारथीका रथ रथी तथा घोड़ोंसहित गहरे गड्ढेमें गिर पड़ता है।

याद रखो—इसलिये मनुष्यका यह कर्तव्य है कि परमानन्दमय भगवान्‌की प्राप्ति या मोक्ष-प्राप्ति अथवा भगवत्प्रेम-प्राप्ति-स्वरूप महान् लक्ष्यपर सदा स्थिर रहे—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमको ही जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य समझे, बुद्धिको सदा भगवत्सम्बन्धी विचारोंमें तथा भगवत्प्राप्तिके साधनोंके अनुष्ठानमें ही लगाये रखे, पवित्र तथा भगवदभिमुखी निश्चयात्मिका बुद्धिके द्वारा मनको सदा भगवत्सम्बन्धी संकल्पों तथा स्मरणमें संलग्न करता रहे; कभी भी अनर्थ या व्यर्थ निश्चय या चिन्तन न करे; इन्द्रियोंको सदा भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही साधनरूपसे नियुक्त करता रहे; उन पवित्र भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही निरन्तर इन्द्रिय, मन, बुद्धिको रसकी—निर्मल भगवत्प्रेमकी—परमानन्दकी प्राप्ति होती रहे।

याद रखो—जिसके कान परनिन्दा, पापचर्चा, असत्-वार्ता, व्यर्थकी बातचीत एवं पतनकी ओर ले जानेवाले गान-वाद्य या कोई भी शब्द और अपनी प्रशंसाके वाक्य न सुनकर केवल सत्-चर्चा, भगवत्-लीला-कथा, भगवत्-स्वरूपकी वार्ता, संतों-भक्तोंके गुणगान, जीवनको उच्चस्तरपर पहुँचानेवाले वाक्य सुनते रहते हैं; जिनकी आँखें भोग्य-विषयोंको न देखकर प्राकृत जगत्‌में सर्वत्र भगवान्‌को और भगवान्‌के सौन्दर्यको तथा भगवद्विग्रहों, साधु-महात्मा तथा संतोंको, पवित्र वस्तुओं तथा स्थानोंको देखती हैं; जिनकी त्वगिन्द्रिय कोमल विकारी पदार्थों, विकार उत्पन्न

करने तथा बढ़ानेवाले अंगोंका स्पर्श न करके पवित्र करनेवाले संत-चरणोंका जीवनमें सात्त्विकता लानेवाले पदार्थोंका स्पर्श करती है; जिनकी जिह्वा स्वाद लानेवाले विकारी राजस-तामस पदार्थोंका रस न चखकर सात्त्विक पदार्थोंका तथा भगवत्प्रसादका रस लेती है और जिनकी नासिका विकार उत्पन्न करनेवाले सुगन्ध-द्रव्योंको छोड़कर पवित्र गन्धका, भगवत्प्रसादरूप गन्धका और सात्त्विक पदार्थोंके गन्धका सेवन करती है, वे पुरुष इन इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करते हैं, इन्द्रियोंके ये पवित्र विषय उनके मन-बुद्धिको और भी पवित्र करते रहते हैं और उनके शरीरोंके द्वारा भी भगवत्सेवाका ही कार्य होता है—इस प्रकार उनके मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा शरीर स्वयं भगवत्कार्यमें लगे रहते हैं और एक-दूसरेको लगाते रहते हैं। इससे उनका जीवन पवित्र, शान्त, सुखमय होकर भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-प्राप्तिके द्वारा सफलजीवन हो जाता है। अतएव सदा-सर्वदा बुद्धिको विवेकवती बनाकर मन-इन्द्रियोंको निरन्तर भगवान्‌के पवित्र पथपर चलाते रहें—यही परम कर्तव्य है।

संतका संग एवं सेवन करें

याद रखो—मनुष्य-जीवनकी चरम तथा परम सफलतारूप भगवत्प्राप्तिके लिये प्रमुख साधनोंमें एक श्रेष्ठ साधन है—भगवत्प्राप्त पुरुषका, संतका संग, उसका सेवन। संग तथा सेवनका अर्थ 'साथ रहना' और 'शारीरिक सेवा' करना भी होता है। परंतु भावरहित हृदयसे केवल साथ रहने अथवा किन्हीं सांसारिक मनोरथोंको मनमें रखकर शारीरिक सेवा करनेसे बहुत ही कम लाभ होता है।

याद रखो—संग वही है, जिसमें उन संत पुरुषके विचारों, भावों, उपदेशों तथा उनके द्वारा प्राप्त तत्त्व-विचारोंका नित्य मनन होता रहे और 'सेवन' वह है, जिसमें इन सबका जीवनमें विकास हो जाय। इसीके लिये सदा सावधान तथा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

याद रखो—संतका संग-सेवन यदि लौकिक कामनाको लेकर किया जाता है तो वह ऐसा ही है, जैसे अमूल्य रत्न हीरेको छोड़कर काँचकी कामना करना। यही नहीं, वस्तुतः सांसारिक भोग निश्चित दुःखपरिणामी और आत्माका पतन करनेवाले हैं—इसलिये भोगकामनाकी पूर्तिके लिये संतका संग तथा सेवन तो पवित्र अमृतके बदले हलाहल विष माँगनेके समान है। यद्यपि संतसे विष मिलता नहीं, क्योंकि उनमें विष है ही नहीं, तथापि लौकिक भोग-कामी साधक परम परमार्थ-धनसे तो दीर्घकालतक वंचित रह ही जाता है। अतएव संतका संग और सेवन केवल भगवत्प्राप्तिके लिये अथवा उस संतकी संतुष्टिके लिये ही करो।

याद रखो—संतका संग तथा सेवन यदि भगवत्प्राप्तिके

शुद्ध-भावसे होगा तो निश्चय ही—साधककी स्थिति तथा साधनकी गतिके अनुसार—उसको परमार्थ-पथपर प्रगतिके अनुभव होने लगेंगे और वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ता चला जायगा। प्रगतिके वे लक्षण ये हैं—

१-काम, क्रोध, लोभ, मद, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, वैर हिंसा, विषाद, शोक, भय, पर-अहितमें रुचि, व्यर्थ-चिन्तन, व्यर्थ-भाषण, कटु भाषण आदिका न रहना।

२-मनमें विकार उत्पन्न करनेवाले शारीरिक, मानसिक, साहित्यिक—कुसंगका त्याग।

३-जगत्‌के विषयोंकी विस्मृति।

४-भोगोंमें वैराग्य तथा उपरति।

५-जागतिक लाभ-हानि तथा अनुकूलता-प्रतिकूलतामें सुख-दुःख न होना, समान स्थिति रहना।

६-बुद्धि, मन तथा इन्द्रियोंका भोगोंकी ओरसे हटकर भगवान्‌में लगे रहना।

७-भगवान्‌के नाम-गुण-लीला-तत्त्व आदिके श्रवण-कीर्तन-स्मरणमें मधुर रुचि।

८-दैवी सम्पत्तिके सभी लक्षणोंका सहज विकास।

९-संतके तथा भगवान्‌के अनुकूल आचरण।

१०-अपने इष्ट भगवान्‌का नित्य मधुर स्मरण।

११-स्वाभाविक ही 'सर्वभूतहित' की भावना तथा शास्त्रविहित कर्मोंमें प्रवृत्ति।

याद रखो—उपर्युक्त लक्षण जीवनमें प्रकट होने लगें तो समझो कि वास्तवमें ही संतका संग तथा संतका सेवन हो रहा है। जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रकाशका होना अनिवार्य तथा स्वयं-सिद्ध प्रत्यक्ष है, वैसे ही संतके संग तथा सेवनसे उपर्युक्त

भावों तथा गुणोंका प्रकाश अनिवार्य, स्वयंसिद्ध तथा प्रत्यक्ष होता है।

याद रखो—संतका संग और संतका सेवन करनेपर भी यदि उपर्युक्त लक्षणोंका उदय न होकर उसके विपरीत आसुरी सम्पत्तिका विकास तथा विस्तार, भोगोंमें तथा पापोंमें रुचि, शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंमें राग, पर-अहितमें प्रसन्नता, विषयचिन्तन आदि होते हैं तो समझना चाहिये कि या तो जिनको संत माना गया है, वे संत नही हैं अथवा उनका संग और सेवन न करके उनके नामपर विषय-संग तथा विषय-सेवन ही किया जा रहा है; भगवत्प्राप्तिका उद्देश्य ही नहीं है।

परदोष-दर्शन तथा पर-निन्दासे हानि

याद रखो—मनुष्यमें एक बड़ी मानसिक दुर्बलता यह है कि वह अपनी प्रशंसा सुनकर और दूसरोंकी निन्दा सुनकर प्रसन्न होता है। अपनी प्रशंसामें और पर-निन्दामें उसे निरन्तर बढ़नेवाली ऐसी एक मिठास आने लगती है कि वह कभी अघाता ही नहीं और फिर स्वयं ही अपनी प्रशंसा तथा दूसरोंकी निन्दा करने लगता है।

याद रखो—जगत्‌में गुण-दोष भरे हैं, पर जिसकी वृत्ति दोष देखनेकी हो जाती है, उसे पर-दोषोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर देखने तथा उनका बढ़ा-चढ़ाकर बखान करनेमें रस आने लगता है। यह बहुत बुरी वृत्ति होती है। इस वृत्तिके हो जानेपर पर-दोष देखना और पर-निन्दा करना ही उसका प्रधान कार्य हो जाता है। फिर, वह जैसे अपने अति आवश्यक कामको मन लगाकर तथा विभिन्न साधनोंसे सम्पन्न करना चाहता है, वैसे ही परदोष-दर्शन

तथा पर-निन्दामें अपने तमाम साधनोंको लगा देता है। यही उसका स्वभाव बन जाता है।

याद रखो—जिसका दोष देखनेका स्वभाव हो जाता है, उसकी आँखें बदल जाती हैं, उसे गुणमें भी दोष दिखायी देते हैं और वह गुणको भी दोष बताकर निन्दा करने लगता है। इसीको 'असूया' दोष कहते हैं।

याद रखो—मनुष्य अपने सच्चे दोषोंकी भी निन्दा सुनना नहीं चाहता, यद्यपि यह उसकी कमजोरी है, फिर झूठी निन्दा सुननेपर तो उसे क्षोभ होता ही है और निन्दा करनेवालेके प्रति द्वेष-द्रोह हो जाता है। उस द्वेष-द्रोहके कारण वह भी अपने निन्दककी निन्दा करता है और उससे कलह करता है। परिणाम यह होता है—आपसमें दोनोंका वैर बँध जाता है और दोनों ही एक-दूसरेका अनिष्ट करनेमें लग जाते हैं। दोनोंके ही अपने-अपने बन्धु-बान्धव भी होते हैं; अतएव इनके वैरका विष उन लोगोंमें भी फैलता है और परस्पर विरोधी दल बन जाते हैं, जिसका परिणाम झगड़ा ही नहीं, हिंसा-हत्यातक हो जाता है और कैद-फाँसीकी भी नौबत आ जाती है। फिर पीढ़ियोंतक वैर चलता है।

याद रखो—जिस मानव-जीवनमें मनुष्य सबका हित करके मन-वाणीसे सबको सुख पहुँचाकर भगवान्‌के सन्मार्गपर चलता और जगत्‌में दैवी सम्पदाका विस्तार करता तथा अन्तमें भजनमें लगकर भगवत्प्राप्ति कर लेता—उस दुर्लभ मानव-जीवनको परदोष-दर्शन तथा पर-निन्दामें तथा अपनी मिथ्या प्रशंसामें लगाकर अपने जीवनको तथा दूसरोंके जीवनको भी इस लोक तथा परलोकमें नरक-यन्त्रणा-भोगका भागी बना देना—कितना बड़ा प्रमाद और पाप है! इससे बड़ी सावधानीके साथ सबको बचना चाहिये।

याद रखो—मनुष्यका परम कर्तव्य है—भगवान्‌के गुणोंका, उनके नामका, उनकी लीलाका श्रवण, कथन तथा कीर्तन एवं स्मरण करनेमें ही जीवनको लगाना। बुद्धिमान् मनुष्यको तो दूसरोंके न तो गुण-दोषका चिन्तन करना चाहिये, न उनको देखना चाहिये और न उनका वर्णन ही करना चाहिये। उसे तो भगवद्‌गुण-चिन्तनसे ही समय नहीं मिलना चाहिये। पर यदि देखे बिना न रहा जाय तो दूसरोंके गुण देखने चाहिये और ढूँढ़-ढूँढ़कर अपने दोष देखने चाहिये। न रहा जाय तो दूसरोंके सच्चे गुणोंकी प्रशंसा करनी चाहिये और अपने दोषोंकी साहसके साथ निन्दा। वास्तवमें परमार्थकी दृष्टिसे तो यह सब कुछ न करके भगवच्चिन्तन तथा भगवन्नामगुणका कथन-कीर्तन-चिन्तन ही करना चाहिये।

याद रखो—आज ही यह प्रतिज्ञा करनी है कि मैं अबसे कभी भी न तो पर-दोष देखूँगा और न किसीकी निन्दा-चुगली ही करूँगा। अपना अधिक-से-अधिक मन तथा समय भगवान्‌के नाम-गुण-स्वरूप-चिन्तनमें ही लगाऊँगा और उन्हींका कीर्तन करूँगा।

एक ही परमात्माकी अनन्त रूपोंमें अभिव्यक्ति

याद रखो—परमात्मा एक हैं और वही अनन्त रूपोंमें अभिव्यक्त हैं। जबतक उन परमात्माका बाहर-भीतर—सर्वत्र सदा साक्षात्कार नहीं होता, तबतक कभी भी सदा रहनेवाली वास्तविक सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।

याद रखो—जैसे एक ही अग्नि अव्यक्तरूपसे समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उसमें कहीं कोई भेद नहीं है, पर जब वही किसी आधार-वस्तुमें व्यक्त होकर प्रज्वलित होती है, तब वह उसी वस्तुके आकारका दृष्टिगोचर होने लगती है; वैसे ही समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मारूपमें विराजित अन्तर्यामी परमात्मा सबमें समभावसे व्याप्त हैं, उनमें कहीं कोई भेद नहीं है, तथापि वे एक होते हुए ही उन-उन प्राणियोंके अनुरूप विभिन्न रूपोंमें दिखायी देते हैं। पर वे उतने ही नहीं हैं, उन सबके बाहर भी अनन्त रूपोंमें स्थित हैं।

याद रखो—जैसे एक ही वायु अव्यक्तरूपसे समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उसमें कोई भेद नहीं है; परंतु व्यक्त होकर विभिन्न वस्तुओंके संयोगसे वह उन्हींके अनुरूप गति तथा शक्तिमान् दिखायी देता है, वैसे ही समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा परमात्मा एक होते हुए ही उन-उन प्राणियोंके सम्बन्धसे विभिन्न पृथक्-पृथक् गति और शक्तिवाले दिखायी देते हैं और उन सबके बाहर भी अनन्त-असीम असंख्य विलक्षण रूपोंमें स्थित हैं।

याद रखो—जैसे एक ही सूर्य समस्त लोकोंको प्रकाशित करता है, उसीका प्रकाश प्राणिमात्रके नेत्रोंमें प्रकाश देता है और प्राणिमात्र उन्हीं नेत्रोंसे विभिन्न प्रकारके बाहरी दोषोंमें लिप्त होते हैं—गुण-दोषमय वस्तुओंको देखते हैं। प्राणी नेत्रोंकी सहायतासे विभिन्न प्रकारके गुण-दोषमय कर्म करते हैं, पर उन सबका प्रकाशक वह सूर्य जैसे किसीके उन गुण-दोषोंसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही सब प्राणियोंके अन्तरात्मा—परमात्मा, (उन परमात्माकी ही शक्ति-सत्तासे क्रियाशील होकर मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके द्वारा) प्राणी अनन्त प्रकारके जो शुभाशुभ कर्म करते हैं, उन क्रूर कर्मोंसे

एवं उनके फल-रूप सुख-दुःखसे लिप्त नहीं होते। वे सबमें रहते हुए ही सबसे पृथक् तथा सर्वथा असंग रहते हैं।

याद रखो—ऐसे वे परमात्मा सदा ही सबके अन्तरात्मा हैं, एक अद्वितीय हैं। सबको सदा अपने वशमें रखते हैं। वे एक ही अपने रूपको अपनी लीलासे बहुत प्रकारका बनाये हुए हैं। उन परमात्माको जो धीर-ज्ञानी पुरुष निरन्तर अपने अन्दर देखते हैं, उन्हींको नित्य सनातन सदा रहनेवाला आत्यन्तिक सुख परमानन्द मिलता है, दूसरोंको नहीं।

याद रखो—जो समस्त नित्योंके भी नित्य आत्मा हैं, जो समस्त चेतनोंके चेतन आत्मा हैं और जो एक होते हुए भी इन अनन्त जीवोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, उन नित्य आत्मामें स्थित एक परमात्माको जो धीर-ज्ञानी पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको नित्य सनातन (सदा रहनेवाली) शान्ति मिलती है, दूसरोंको नहीं।

याद रखो—यह तत्त्वज्ञानी भगवत्प्राप्त पुरुषोंका अनुभव है। यह वेदवाणी है। यह उपनिषद्‌की घोषणा है। इसको समझो और इसके अनुसार साधन करके परमात्माको नित्य-निरन्तर बाहर-भीतर देखो एवं अपने मानव-जीवनको सफल करो।

भगवान्‌की उपासनाका यथार्थ स्वरूप

याद रखो—समस्त विश्वके सम्पूर्ण प्राणी भगवत्स्वरूप हैं, यह जानकर सबको बाहरकी स्थितिके अनुसार हाथ जोड़कर प्रणाम करो या मनसे भक्तिपूर्वक नमन करो। किसी भी प्राणीसे कभी द्वेष मत रखो, किसीको कटु वचन मत कहो, किसीका मन मत दुखाओ और सबके साथ आदर, प्रेम तथा विनयसे बरतो। यह भगवान्‌के समीप बैठनेकी एक उपासना है।

याद रखो—तुम्हारे पास विद्या-बुद्धि, अन्न-धन, विभूति-सम्पत्ति है—सब भगवान्‌की सेवाके लिये ही तुम्हें मिली है। उसके द्वारा तुम गरीब-दुःखी, पीड़ित-रोगी, साधु-ब्राह्मण, विधवा-विद्यार्थी, भय-विषादसे ग्रस्त मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटी—सबकी यथायोग्य सेवा करो—उन्हें भगवान् समझकर निरभिमान होकर उनकी वस्तु उनको सादर समर्पित करते हुए। यह भी भगवान्‌के समीप बैठनेकी एक उपासना है।

याद रखो—तुम्हें जीभ मिली है—भगवान्‌का दिव्य मधुर नाम-गुण-गान-कीर्तन करनेके लिये और कान मिले हैं—भगवान्‌का नाम-गुण-गान-कीर्तन सुननेके लिये। अतएव तुम जीभको निन्दा-स्तुति, वाद-विवाद, मिथ्या-कटु, अहितकर-व्यर्थ बातोंसे बचाकर नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नाम-गुण-गान-कीर्तनमें लगाये रखो और कानोंके द्वारा बड़ी समुत्कण्ठाके साथ उल्लासपूर्वक सदा-सर्वदा भगवान्‌के नाम-गुण-गान-कीर्तनको सुनते रहो। यह भी भगवान्‌के समीप बैठनेकी एक उपासना है।

याद रखो—तुम्हें मन मिला है सारी वासना-कामनाओंके जालसे मुक्त होकर समस्त जागतिक स्फुरणाओंको समाप्तकर भगवान्‌के रूप-गुण-तत्त्वका मनन करनेके लिये और बुद्धि मिली है—निश्चयात्मिका होकर निरन्तर भगवान्‌में लगी रहनेके लिये। यही मन-बुद्धिका समर्पण है। भगवान् यही चाहते हैं। इसलिये मनके द्वारा निरन्तर अनन्य चित्तसे भगवान्‌का चिन्तन करो और बुद्धिको एकनिष्ठ अव्यभिचारिणी बनाकर निरन्तर भगवान्‌में लगाये रखो। यह भी भगवान्‌के समीप बैठनेकी एक उपासना है।

याद रखो—तुम्हें शरीर मिला है भगवद्भावसे गुरुजनोंकी, रोगियोंकी, असमर्थोंकी आदरपूर्वक सेवा-टहल करनेके लिये,

देवता-द्विज-गुरु-प्राज्ञके पूजनके लिये, पीड़ितकी रक्षाके लिये और सबको सुख पहुँचानेके लिये। अतएव शरीरको संयमित रखते हुए शरीरके द्वारा यथायोग्य सबकी सेवा-चाकरी-रक्षा आदिका कार्य सम्पन्न करते रहो। यह भी भगवान्‌के समीप बैठनेकी एक उपासना है।

याद रखो—तुम्हें मनुष्य-जीवन मिला है केवल श्रीभगवान्‌का तत्त्वज्ञान, भगवान्‌के दर्शन या भगवान्‌के दुर्लभ प्रेमकी प्राप्तिके लिये। यही मानव-जीवनका परम साध्य है और इसी साध्यकी प्राप्तिके लिये सतत सावधान रहते हुए यथायोग्य पूर्ण प्रयत्न करते रहना ही मनुष्यका परम कर्तव्य है। इस कर्तव्यपालनमें सावधानीसे लगे रहना ही वास्तविक उपासना है। इसके विपरीत भोगों—सुखकी मिथ्या आशा-आस्था-आकांक्षाको लेकर जो प्रयत्न करना है, वह तो प्रमाद है और आत्महत्याके समान है। अतएव भोग-सुखकी मिथ्या आशा-आकांक्षाका सर्वथा त्याग करके मानव-जीवनको सदा-सर्वदा सब प्रकारसे भगवत्प्राप्तिके साधनमें, अपनी स्थिति और रुचिके अनुसार ज्ञान-कर्म-उपासनारूप किसी भी उपासनामें लगाये रखो। यही मानव-जीवनका सदुपयोग है और इसीमें मानव-जीवनकी सफलता है। यही भगवान्‌के समीप बैठना है और यही यथार्थ उपासना है।

विश्वात्मा भगवान्‌की सच्ची पूजा

याद रखो—सारा चराचर जगत् एक ही भगवान्‌की अभिव्यक्ति है। एक ही भगवान् इन सबके रूपमें प्रकट हो रहे हैं तथा सबमें नित्य एक ही आत्मा विराजमान है। जैसे एक ही शरीरके पृथक्-पृथक् बहुत-से अंग-उपांग होते हैं और उनके नाम तथा काम भी अलग-अलग होते हैं, परंतु सबमें आत्मा एक ही होता है, उनमेंसे किसीका भी सुख-दुःख आत्माका ही सुख-दुःख होता है; वैसे ही सारे विश्वके सब चराचर प्राणी एक ही भगवान्‌के अंग-उपांग हैं; उसीके सनातन अभिन्न अंश हैं। यह समझकर सभीको सुख पहुँचाओ, सभीका हित करो और सभीको अपने-अपने कार्यमें सुखपूर्वक लगे रहने दो।

याद रखो—जब तुम्हारे अंदर सबके प्रति आत्मभावना होगी—एकात्मताका अद्वैत-भाव होगा, तब तुम्हारी अहंता और ममता ('मैं' और 'मेरा') सीमित नहीं रहेगी। अतएव सहज ही तुम देह-बुद्धिसे छूट जाओगे, फिर इस सीमित 'मैं-मेरे' के लिये दूसरोंको पृथक् समझकर उनका कभी अहित नहीं चाहोगे, उनको दुःख देना नहीं चाहोगे। वरं उनका हित तथा सुख तुम्हारा ही हित-सुख है—यह समझकर सबके हित तथा सुखकी ही बात सोचोगे और वही करोगे। फिर तुम्हारे अंदर सीमित इच्छा नहीं रहेगी, न कहीं किसी विषयमें राग (आसक्ति) रहेगी, अपनी हानिका भय नहीं रहेगा और कामनापर चोट लगनेसे उत्पन्न होनेवाले क्रोधका कभी उदय नहीं होगा। तुम 'वीतराग-भय-क्रोध' होकर भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाओगे। वस्तुतः जो 'वीत-राग-भय-क्रोध' है, वही स्थितप्रज्ञ है और जो 'विगतेच्छा-भयक्रोध' है, वही सदा 'मुक्त' है।

याद रखो—राग, इच्छा, भय, क्रोध तभी होते हैं, जब तुम अपनेको 'मैं'-'मेरे' की छोटी-सी सीमामें आबद्ध कर रखते हो। तभी अपनेको सबसे पृथक्, अपने 'स्व' को एक छोटे दायरेमें, अपने 'स्वार्थ' को एक छोटे घेरेमें लाकर, दूसरे सबको पराया—दूसरा मानने लगते हो, फिर छोटे-छोटे अभिमान—शरीरका, देशका, जातिका, वर्गका, मतका, प्रान्तका, भाषाका, मान-प्रतिष्ठाका, सुख-आरामका—तुम्हें क्रमशः संकुचित-से-संकुचित सीमामें ले जाकर भयभीत कर देते हैं। तुम अपने माने हुए इन पदार्थ-परिस्थितियोंकी रक्षाके लिये, दूसरे इनका विनाश कर देंगे—इस प्रकारकी कल्पना करके सबपर संदेह करने तथा सबसे भयभीत होने लगते हो और बदलेमें दूसरे भी इसी प्रकारकी परिस्थितिमें परिणत होकर तुमपर संदेह करने और तुमसे डरने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि परस्पर शंका बढ़ती है, आँखें बदल जानेसे दोष दिखायी देने लगते हैं और ईर्ष्या, द्वेष, घृणा तथा वैर बढ़ जाते हैं, जो हिंसाके रूपमें प्रकट होकर ऐसे अवांछनीय कुकर्म करा बैठते हैं, जिनसे अपना तथा दूसरोंका एवं बिना जाने-पहचाने हुए असंख्य निर्दोष प्राणियोंका बहुत बड़ा विनाश हो जाता है। इससे मानव-जीवनकी सफलतामें ही केवल बाधा नहीं पड़ती; जीवनभर अशान्ति, दुःख तथा अभावजनित संताप सहते हुए और अन्तिम श्वासतक भीषण चिन्ताकी आगमें जलते हुए मरना पड़ता है एवं मरनेके बाद कष्ट-क्लेशमयी आसुरी योनि तथा भीषण यन्त्रणादायक नरकोंकी प्राप्ति होती है।

याद रखो—कर्मके फलसे प्राणी बच नहीं सकता। अतएव सबमें एक भगवान् अथवा एक ही आत्माको देखकर सबका हित करो, सबको सुख पहुँचाओ, सबको सम्मान-दान करो, सबको प्रेम-दान करो, सबको अभय प्रदान करो। कोई भी प्राणी

तुम्हारे द्वारा कभी न अपमानित हो, न सताया जाय, न भय प्राप्त करे, न उद्विग्न हो और न किसी प्रकार अहित प्राप्त करे। अपने विचार-व्यवहार-कार्य—सबको विनम्रता, मधुरता, प्रेम, सत्य तथा हितसे भरे रखो। तुम्हारा मंगल होगा, दूसरोंका मंगल होगा, विश्वका मंगल होगा; क्योंकि इसीसे विश्वात्मा भगवान्‌की सच्ची पूजा होगी।

भगवत्प्राप्तिका मार्ग

याद रखो—मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है—यह बात सैकड़ों-हजारों बार कही-सुनी जाती है, पर भगवत्प्राप्तिके मार्गपर बहुत कम लोग निष्ठाके साथ चलते हैं। जो स्वयं नहीं चलते और चलनेकी बात कहते-सुनते हैं; उनकी देखा-देखी और लोग भी कहना-सुनना सीख लेते हैं—चलना नहीं सीखते। इसलिये भगवत्प्राप्ति केवल वाणीका विलासमात्र रह जाता है।

याद रखो—मनुष्योंके समुदायका नाम ही समाज है। यदि समाजका प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनके उद्देश्यको समझकर लक्ष्यको सामने रखकर दूसरेकी प्रतीक्षा किये बिना भगवत्प्राप्तिके मार्गपर चलने लगे तो समाज अपने-आप ही चलने लगेगा। इसलिये कहने-सुननेकी बात छोड़कर स्वयं करना चाहिये।

याद रखो—जब किसी कामका मन दृढ़ निश्चय करता है, तब मनुष्य उस कामको करने लगता है। इसलिये कलपर न छोड़कर आज ही निश्चय करो कि मुझको आज ही अभीसे ही भगवत्प्राप्तिके मार्गपर चलना शुरू करना है। सबसे पहले जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, इसका निश्चय करो। इस

'निश्चय' का अर्थ ही है जीवनको भगवान्‌के सम्मुख कर देना। अभी हमारा जीवन भगवान्‌के विमुख है और भोगोंके सम्मुख है। इसको घुमाकर भगवान्‌के सम्मुख कर देना है, फिर एक पैंड भी आगे चलेंगे तो भगवान्‌की ओर ही चलेंगे।

याद रखो—भगवान्‌के सम्मुख होकर खड़े नहीं रहना है, उनकी ओर उनकी प्राप्तिके मार्गपर सावधानीसे सतत चलना है। इसीका नाम साधन है। भगवत्प्राप्तिके साधनमें तन-मन-वचनके सब कार्य भगवत्प्रीत्यर्थ करने हैं और भगवान्‌के प्रीत्यर्थ वही कर्म होते हैं, जो भगवान्‌के अनुकूल होते हैं। अतएव भगवान्‌के अनुकूल कर्मोंका आचरण करना है। इससे प्रतिकूलका त्याग तो आप ही हो जायगा।

याद रखो—भगवान्‌के अनुकूल कार्योंमें प्रधान तो है—प्रत्येक कर्ममें भगवत्प्रीतिकी भावना; और वे कार्य हैं—किसी प्राणीकी हिंसा न करके, किसीको कष्ट न पहुँचाकर, किसीका अहित न करके सबका पालन करना, सबको सुख पहुँचाना, सबका हित करना, किसीको शाप, गाली न देकर—किसीकी निन्दा-चुगली न करके झूठ न बोलकर व्यर्थकी चर्चा न करके, जिससे दूसरेका उपकार हो, उसके गुणोंकी सच्ची प्रशंसा हो,जो सत्य हो तथा जो निर्दोष एवं आवश्यक हो, ऐसे वचन बोलना या मौन रहकर निरन्तर भगवान्‌के नामका रटन तथा उनके स्तोत्रोंका पाठ करते रहना। किसीका अनिष्ट-चिन्तन न करके, शोक-विषाद न करके, भोगेच्छा न रखकर, क्रूर भावका त्याग कर, विषय-चिन्तनको छोड़कर सबका इष्ट-चिन्तन करना, मनमें प्रसन्न रहना, त्यागकी इच्छा रखना, सौम्य-दयामय भाव रखना और निरन्तर भगवच्चिन्तन करना तथा भगवान्‌का नाम, जप, कीर्तन, भजन, सत्संग, ध्यान, अनाथ-दुःखियों-

पीड़ितोंकी सेवा, सच्चिन्तन, स्वाध्याय, गुरुजनोंका पूजन करना—ये सभी साधन भोग-कामनासे न करके भगवत्प्रीत्यर्थ करनेसे भगवत्-प्राप्तिके प्रत्यक्ष साधन बन जाते हैं। इनके करनेसे सदाचारमें प्रीति, भोगोंमें वैराग्य, अन्त:करणकी शुद्धि, दैवी सम्पत्तिका स्वभाव, भगवान्के तत्त्वज्ञानका उदय और भगवत्प्रेमका प्रादुर्भाव हो जाता है। यही भगवत्प्राप्तिका प्रशस्त तथा निश्चित मार्ग है।

याद रखो—मार्ग तो जान लिया, पर कार्य सफल होगा मार्गपर चलनेसे ही। अतएव आज ही चलना शुरू कर दिया जाय। इसमें न आलस्य करना है, न प्रमाद।

याद रखो—जीवन चला जा रहा है—मृत्यु समीप आ रही है। यदि यों ही प्रमादमें, भोग-लिप्सामें, विषय-चिन्तनमें जीवन बीतता रहा तो मानव-जीवन असफलतामें ही नष्ट हो जायगा। फिर पश्चात्तापके सिवा कोई उपाय नहीं रह जायगा। अतएव इस कार्यमें जरा भी विलम्ब नहीं करना है।

आनन्द एकमात्र परमात्मामें ही है

याद रखो—तुम जिन प्राणी-पदार्थोंमें सुख-शान्ति खोज रहे हो, उनमें सुख-शान्ति है ही नहीं। वे स्वयं अभावग्रस्त तथा अपूर्ण हैं। उनकी अप्राप्तिमें तो तुम सुख-शान्तिसे वंचित हो ही, उनकी जितनी ही तुम्हें प्राप्ति होगी उतनी ही तुम्हारी अभावग्रस्तता तथा अपूर्णता बढ़ेगी और फलत: उतनी ही मात्रामें सुख-शान्ति भी तुम्हारे जीवनसे दूर हट जायँगी। सुख-शान्ति तो वहीं हैं, जहाँ पूर्णता तथा नित्यता है तथा जहाँ अभावका सर्वथा अभाव है। ऐसी वस्तु एकमात्र भगवान् हैं। उन भगवान्को पानेका प्रयत्न

करो। उनके बिना संसारमें अभाव-ही-अभाव है। उनके मिलते ही सारे अभाव नष्ट हो जायँगे और नित्य सत्य अनन्त सुख-शान्तिकी तुम्हें प्राप्ति हो जायगी।

याद रखो—उन पूर्ण परमात्माकी प्राप्ति ही तुम्हारे जीवनका असली लक्ष्य है। उसीके लिये तुम्हें मानव-जीवन दिया गया है, जिसमें विवेकके द्वारा तुम अपूर्ण अभावग्रस्त प्राणिपदार्थोंका मोह त्याग करके परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें लग जाओ और परमात्माको प्राप्त करके जीवनको सफल बना लो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम मानव-जीवनके लक्ष्यसे च्युत होकर ऐसे-ऐसे कर्मोंका आचरण करोगे, जिनका फल मानव-जीवनकी असफलता तो होगा ही, तुम्हारा भविष्य बिगड़ेगा। तुम आसुरी योनियोंको तथा अन्धतम नरकोंको प्राप्त करके दुःखी हो जाओगे।

याद रखो—मानव-शरीरके श्वास पहलेसे निर्धारित हैं, श्वास पूरे हुए कि शरीर छूटा और श्वास अनवरत चल ही रहे हैं। अतएव असली लक्ष्यकी प्राप्तिमें शीघ्र लग जाओ। प्रमाद-आलस्य मत करो। न तो न करनेयोग्य व्यर्थ अनर्थके कार्योंमें लगो और न लक्ष्यके साधनको कलपर छोड़ो। अभी इसी क्षण लग जाओ। पूरे मनसे लक्ष्य-प्राप्तिकी साधनामें। पता नहीं किस क्षण मृत्यु आ जाय। उसके पहले-पहले ही अपने लक्ष्यपर पहुँच जाना है।

याद रखो—यहाँकी कोई वस्तु, कोई भी प्राणी, कोई भी परिस्थिति न तो तुम्हारी है, न तुम्हारा उनसे कोई आत्मिक सम्बन्ध है और न उनके मिलने-बिछुड़ने या आने-जानेमें तुम्हारा यथार्थमें कोई लाभ-हानि ही है। व्यर्थ ही तुम ममताका सम्बन्ध जोड़कर दुःख तथा बन्धनमें पड़े हुए हो तथा राग-द्वेष करके नये-नये पाप

करते रहते हो। तुम्हारे अपने तो एकमात्र परमात्मा ही हैं, जो नित्य तुम्हारे साथ हैं। उन परमात्मामें पूर्ण ममता करो। जगत्के प्राणिपदार्थोंमें न ममता करो, न राग करो, न उन्हें पराया समझकर द्वेष करो। उनकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें सम रहो तथा सब समय सभी स्थितियोंमें समभावसे उन सबमें परमात्माको देखकर परमात्माके भावमें निमग्न रहो।

याद रखो—अखण्ड दिव्य नित्य आत्यन्तिक आनन्द एकमात्र परमात्मामें ही है, वह उनका स्वरूप ही है। जब तुम्हें सारे जगत्में सर्वत्र सदा परमात्मा दिखायी देंगे तो जगत् भी सर्वथा-सर्वदा तुम्हारे लिये आनन्दस्वरूप हो जायगा और तुम भी आनन्द-स्वरूप हो जाओगे। पर जबतक जगत्में परमात्माको नहीं देख पाओगे, तबतक तो जगत् 'दुःखालय' और 'दुःखयोनि' ही रहेगा।

अपने-आपको उठाते रहो

याद रखो—वही मनुष्य उच्च स्तरपर पहुँचता है, जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपद अपनेको—अपनी बुद्धिको, मनको, आचार-विचारको उच्चतर स्तरपर चढ़ाता रहता है। अतएव निरन्तर सावधानीके साथ पवित्र विचारोंको—विशुद्ध भावोंको बनाते और बढ़ाते रहो। कभी प्रमाद मत करो, कभी असावधान मत होओ।

याद रखो—विशुद्ध भाव तथा पवित्र विचार तभी समझे जा सकते हैं, जब मनुष्यके द्वारा सहज ही दूसरोंको सुख पहुँचे, दूसरोंका हित-सम्पादन हो तथा इस पर-हित-सुख-सम्पादनरूप सन्मार्गके द्वारा वह मनुष्य-जीवनके एकमात्र लक्ष्य भगवान्की ओर अग्रसर होता रहे। पर-हित-सुखका सम्पादन कर्तव्यके बोधसे नहीं, न किसी प्रकारका प्रत्युपकार, प्रतिफल या पुरस्कार

पानेके लिये किया जाय। वह स्वाभाविक ही मनमें हर्ष बढ़ानेवाला प्रिय कार्य हो। उसके किये बिना रहा न जाय।

याद रखो—व्यवहारमें सत्यता, वाणीमें मधुरता और नम्रता, बर्तावमें सरलता, विचारमें पर-हितका लक्ष्य, इन्द्रियोंमें संयम, बुद्धिमें नित्य-सत्य-विवेक आदि उत्तरोत्तर सहजरूपसे बढ़ते रहें, पर कहीं भी किसी प्रकारका अभिमान न आने पाये।

याद रखो—संयम, त्याग, प्रेम, सेवा, सद्व्यवहार आदि सद्गुण तो सदा बढ़ते रहने चाहिये; परंतु यदि इनका अभिमान जरा भी आ गया तो ये सद्गुण रहेंगे नहीं। वह अभिमान अपनी मात्राके अनुसार सारे सद्गुणोंका न्यूनाधिकरूपमें नाश करता रहेगा, अन्तमें अभिमानमात्र रह जायगा। सद्गुण चले जायँगे। अतएव समस्त सद्गुणोंका नाश और समस्त दुर्गुणोंका विकास करनेवाले अभिमानसे सदा बचे रहो।

याद रखो—अपनेमें यदि कोई सद्गुण है तो वह भगवान्की सम्पत्ति है—दैवी सम्पत्ति है, भगवान्की कृपासे मिली है। भगवान्की इस कृपाके लिये सदा भगवान्के कृतज्ञ रहो और अपने दैन्यको प्रत्यक्ष देखते हुए उस महान् भगवत्कृपाका और भी दृढ़ अवलम्बन तथा आश्रय प्राप्त करो। फिर अभिमानका उदय नहीं होगा। पद-पदपर भगवान्की कृपा दिखायी देगी, उत्तरोत्तर सद्गुण बढ़ते रहेंगे। जीवन भगवान्का मूर्तिमान् सेवास्वरूप बनकर परम पवित्र तथा सफल हो जायगा।

याद रखो—जो अपनेको वास्तवमें उच्च स्तरपर ले जाना चाहता है, वह सहज ही सर्वोच्च तत्त्व भगवान्का आश्रय ग्रहण करता है। सारी उच्चता, महानता, पवित्रता, सुख-समृद्धि, दैवी सम्पत्ति भगवान्से ही आती है, भगवान् ही उन सबके अनन्त निधि हैं। भगवान्को छोड़कर जो अन्य प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिका आश्रय लेता है; वह

उस प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिके स्वभाव-गुणको ही प्राप्त होता है और भगवान्‌को छोड़कर शेष सभी कुछ दोषमय तथा दुःखपरिणामी हैं।

याद रखो—भगवान् ऐसे सुदृढ़ अवलम्बन हैं कि उनका आश्रय लेनेवाला कभी गिरता नहीं, भगवान् उसकी पूरी देख-रेख, सँभाल रखते हैं; पर भगवान्‌के स्थानपर जो अभिमानका आश्रय ले लेता है, वह निश्चय ही गिरता है—चाहे उसने अभिमानका नाम भी भगवान् रख छोड़ा हो; अतएव नित्य-निरन्तर सर्व-शक्तिमान्, सर्वज्ञ, परम सुहृद् भगवान्‌का आश्रय करके अपने-आपको उठाते रहो, कभी गिराओ मत।

क्रोध सहस्त्रों दोषोंकी खान है

याद रखो—जब कामना पूरी नहीं होती, उसपर चोट लगती है, हमारी इच्छाके विरुद्ध कुछ होता है, तब मनमें एक जलती हुई वृत्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम है—क्रोध। क्रोध उत्पन्न होनेपर विवेक नष्ट हो जाता है, मन बेकाबू हो जाता है; वाणी मर्यादा, लज्जा तथा शील छोड़ देती है, व्याकुलता, उग्रता, अशान्ति, हिंसा और विनाशके भाव जाग उठते हैं।

याद रखो—जब क्रोध आता है, तब मुख तमतमा जाता है, आँखें लाल हो जाती हैं, भौंहें चढ़ जाती हैं, शरीर काँपने लगता है, होंठ चलने लगते हैं और इतनी मूर्खता छा जाती है कि क्रोधी मनुष्य आवेशमें भविष्यको भूलकर चाहे सो कर बैठता है।

याद रखो—क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रहता, उसकी पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है। गुर्देकी तथा यकृतकी क्रिया विकृत हो जाती है। मुखसे अनर्गल निकलनेवाले कुत्सित, अश्लील और हिंसाभरे शब्द उसके शरीरपर वैसा ही प्रभाव डालते हैं। मनकी

आग देहको भी जलाती है। संहार तथा विनाशका एक ऐसा घोररूप बन जाता है जो शरीरके नाश—आत्महत्या आदिके लिये बलपूर्वक प्रेरणा देता है।

याद रखो—क्रोध तमोगुणका मूर्तरूप है। तमोगुण बुद्धिका विनाश करता है, नीच कर्म करवाता है, प्रमादमें प्रवृत्त करता है और अधोगतिमें ले जाता है। क्रोध महाशत्रु है और शान्ति-सुख, लोक-परलोक और भुक्ति-मुक्ति—सबका सहज ही नाश कर देता है।

याद रखो—क्रोध शरीर तथा मनके सौन्दर्य-माधुर्यको नष्ट कर देता है। क्रोधी मनुष्यका मुख तथा सारे अंग—कुल शरीर विकृत हो जाता है; उसकी मधुरता तथा सुन्दरता मर जाती है तथा मनमें रहनेवाले प्रेम, त्याग, दया, सेवा, शील, शान्ति, सद्भावना, न्याय, विवेक, वैराग्य, स्वास्थ्यकर विचार, आध्यात्मिक साधनाके भाव, जो मनके वास्तविक सौन्दर्य-माधुर्य हैं, मिट जाते हैं।

याद रखो—क्रोधको यदि तनिक भी रहने दिया जाय तो वह चिरस्थायी मानस रोग बन जाता है, जो स्वभावमें चिड़चिड़ापन, अविश्वास, अहंकार, उद्वेग, अस्थिरता, कपट, असहिष्णुता, दूसरोंको दु:ख पहुँचानेकी इच्छा आदि नये-नये मानस रोगोंको उत्पन्न करता और उनको बढ़ानेमें सहायक होता है। क्रोधसे दीर्घकालीन—जन्मान्तरतक चलनेवाले वैर, हिंसा-प्रतिहिंसा-जैसे पतनकारी घोर दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जो हमारे सर्वनाशका कारण होते हैं।

याद रखो—जिसके मनमें क्रोध उत्पन्न होता है, वह क्रोध आते ही तुरंत जलने लगता है और जिसपर क्रोध आता है, वह क्रोधके व्यक्त होनेपर जलता है। फिर तो क्रोधाग्निमें परस्परके

अनर्गल अविवेकयुक्त वाक्योंकी आहुति पड़ने लगती है, जो क्रोधको उत्तरोत्तर बढ़ाती रहती है।

याद रखो—उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त अन्यान्य सहस्रों दोषोंकी खान तथा योनि है क्रोध। अतएव क्रोधसे सदा ही बचना चाहिये। जब हम सबके मनकी नहीं कर सकते, तब सब हमारे मनकी करें—यह आशा हमें क्यों करनी चाहिये और जब भगवान्‌के मंगल-विधानानुसार फल पहलेसे निश्चित है, तब हमें क्यों कामना करनी चाहिये।

याद रखो—कामना और अपने मनकी हो—ऐसी इच्छा न होगी तो क्रोध आवेगा ही नहीं। फिर सदा शान्ति रहेगी। पर यदि किसी कारणसे क्रोध आ भी जाय तो उस समय उसे अपने अंदर ही रखकर अपने-आप मर जाने दो। क्रोध आनेपर बोलो मत, मौनका नियम कर लो या भगवान्‌के पवित्र नामका जप आरम्भ कर दो। क्रोधको आश्रय नहीं मिलेगा—अर्थात् उसके आवेशमें कोई क्रिया नहीं होगी तो वह आप ही नष्ट हो जायगा।

श्रीमद्भगवद्गीतानुसार भगवत्प्राप्तिके उपाय

याद रखो—भगवान्‌की गुणमयी माया बड़ी ही दुस्तर है, उससे तर जाना बड़ा ही कठिन है; परंतु भगवान्‌के ही शरण होकर उनका भजन करनेपर मायासे सहज ही तरा जाता है। भगवान्‌ने कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

(गीता ४। १४)

याद रखो—भगवान्‌की प्राप्ति बड़ी कठिन है, पर भगवान्‌में मन-बुद्धि लगाकर जो सदा-सर्वदा भगवान्‌का स्मरण करता है, अन्तकालमें उसको भगवान्‌की ही स्मृति होती है और वह निस्संदेह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है। भगवान्‌ने कहा है—

मामेवैष्यस्यसंशयम्। (गीता ८।७)

याद रखो—भगवान्‌का प्राप्त होना बहुत ही दुर्लभ है, पर जो मनको अनन्य करके नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त भक्तको भगवान् सुलभतासे मिल जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

तस्याहं सुलभः पार्थ। (गीता ८।१४)

याद रखो—साधनकी रक्षा (आवश्यक प्राप्त वस्तुकी रक्षा) और साध्यकी प्राप्ति (जिसका प्राप्त करना हमारे लिये अनिवार्य है)-को 'योगक्षेम' कहते हैं। इस 'योगक्षेम' का भार मनुष्य उठाना चाहता है; पर वह असफल होता है; किंतु वह यदि भगवान्‌का अनन्य चिन्तन करते हुए भगवान्‌की उपासना करे तो उसके 'योगक्षेम' का सारा भार स्वयं भगवान् वहन करते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

याद रखो—पापी मनुष्यका पापसे मुक्त होकर साधु, धर्मात्मा, शाश्वत शान्तिका अधिकारी होना प्रायः असम्भव-सा है; परंतु अनन्यभाक् होकर भगवान्‌का भजन करनेपर महान् पापी भी साधु, धर्मात्मा, शाश्वत शान्तिका अधिकारी और भक्त बन जाता है और ऐसे भक्तके कभी पतन न होनेकी प्रतिश्रुति देते हुए भगवान् कहते हैं—

कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९।३१)

याद रखो—भगवान् सबके हैं और उनको अपना मानकर तथा उनके अपने बनकर उनका भजन करके परम गतिको प्राप्त करनेके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा पापयोनितक सभी अधिकारी हैं। इसलिये इस अनित्य और सुखरहित जगत्में पैदा होकर नित्य जीवन तथा अखण्ड-अनन्त-आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको भगवान्का भजन ही करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९। ३३)

याद रखो—जो भगवान्में चित्त और प्राण अर्पण करके परस्पर भगवच्चर्चा करते, भगवान्के भजनका रहस्य समझते, भगवान्का ही नाम-गुण-गान करते, इसीमें संतुष्ट रहते तथा इसीमें प्रीति करते हैं—ऐसे निरन्तर प्रीतिपूर्वक भगवान्का भजन करनेवाले पुरुषोंको स्वयं भगवान् 'बुद्धियोग' देकर अपनी प्राप्ति करवा देते हैं। भगवान् कहते हैं—

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

याद रखो—मृत्युरूपी संसार-सागर बड़ा दुस्तर है; पर जो लोग भगवान्में चित्त लगाकर भगवान्का ही आश्रय कर लेते हैं, उन्हें स्वयं भगवान् शीघ्र-से-शीघ्र सुखपूर्वक पार उतार देते हैं। भगवान् कहते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ७)

याद रखो—जीवनयापनमें—साधनामें बड़ी-बड़ी बाधाएँ आती हैं। उनसे पार हो जाना सहज नहीं होता, पर भगवान्में

चित्त लगानेसे—भगवान्पर अनन्य निर्भरता होनेसे, भगवान्की कृपासे मनुष्य सारी बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयोंसे—बाधाओंसे पार उतर जाता है। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८।५८)

याद रखो—अनन्त जन्मोंके अनन्त संचित पाप हैं, जिनसे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ना होता है, कभी छुटकारा नहीं मिलता। नयी-नयी पाप-वासनाएँ, नये-नये पाप-कर्म और नये-नये पाप-परिणाम आते रहते हैं। मनुष्यका अपने पुरुषार्थसे—शक्ति, सामर्थ्यसे इनसे छुटकारा पाना असम्भव-सा है परंतु यदि वह सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर एकमात्र भगवान्के शरण हो जाता है तो भगवान् उसे सब पापोंसे (पापसंचय, पापप्रवृत्ति, पापपरिणाम—सभीसे) मुक्त कर देते हैं, उसे शोक नहीं करना पड़ता। भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

मानव-धर्म

याद रखो—किसी भी प्रकारसे किसी भी प्राणीके हितका विनाश करना हिंसा है। यह हिंसा मनसे होती है, वाणीसे होती है, कर्मसे होती है। किसीके भी हितनाशकी चाह करना मानस हिंसा है, हितनाशकी बात कहना वाचनिक हिंसा है और हितनाश करना कर्मजनित हिंसा है।

याद रखो—कोई भी प्राणी अपना अहित नहीं चाहता; सभी

अपना हित—भला चाहते हैं। अतएव सदा मन-वचन-शरीरसे वही करना चाहिये, जिसमें दूसरोंका हित होता हो। यही 'अहिंसा' है। इसीका नाम 'मैत्री' है। यह अहिंसाकी—मैत्रीकी वृत्ति प्राणिमात्रके प्रति होनी चाहिये। मानवप्राणी विवेक-सम्पन्न है, अतएव उसपर विशेष दायित्व है। मानवप्राणी यदि परस्पर एक-दूसरेके हितसाधनमें लग जायँ, सभी सबके हितकी बात सोचें, हितकी बात कहें और हितका काम करें तो सबका भला हो सकता है। यह समष्टि-कल्याण ही वास्तवमें 'मानव-धर्म' है।

याद रखो—जो धारण करता है, वह धर्म है—जिस आचरण-व्यवहारके द्वारा प्राणिमात्र दुःखसे छूटें, सब सुखको प्राप्त करें, सबकी उन्नति और समृद्धि हो एवं सभी परस्पर एक-दूसरेके सुख-हित-सम्पादनके लिये सचेष्ट रहें—इस प्रकारके सर्वभूत-हितकर आचरणका नाम ही धर्म है।

याद रखो—मानव-जगत्में जब इस धर्मका विस्तार होता है, तब जगत्का वातावरण प्रेम तथा शान्तिसे भर जाता है। द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसाका अस्तित्व लोप-सा होने लगता है और जब हिंसा नहीं होती तो प्रतिहिंसा कहाँसे होगी। सब सबको प्रसन्न देखना चाहते हैं और सब सबको देखकर प्रसन्न होते हैं।

याद रखो—जब मानव-समाजमें द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसा तथा प्रतिहिंसा आदि दोष बढ़ जाते हैं, तब इनकी प्रेरणासे हिंसा-परायण होकर मनुष्य स्वयं ही मनुष्यका विनाश सोचने तथा विनाश करनेमें लग जाता है। उसके मन-बुद्धि, उसकी शिक्षा-विद्या, उसका ज्ञान-विज्ञान, उसकी शक्ति-सामर्थ्य, उसकी धन-सम्पत्ति, उसका अधिकार-प्रभाव और उसका आराधन-पूजन—सब इस विनाशके साधन बन जाते हैं।

याद रखो—मनुष्यकी शक्ति अपार है और उसकी योजनाएँ

अत्यन्त विस्तृत तथा बहुमुखी हैं। उसकी योजनाएँ, मन-बुद्धिका निर्माण तथा विकास करनेवाले सत्संग, साहित्यलेखन, खान-पान, गोष्ठी, सभा-सम्मेलन, बड़े-छोटे विद्यालय एवं विश्वविद्यालय, ज्ञानार्जनके लिये छोटे-बड़े आश्रम, विज्ञानकी बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ, शक्ति-बल-सामर्थ्य बढ़ानेवाली मल्लशालाएँ, युद्धकला-शिक्षालय, शस्त्रास्त्र-निर्माणकेन्द्र, छोटे-बड़े व्यापारकी मण्डियाँ, विभिन्न वस्तुओंका उत्पादन तथा निर्माण करनेवाले कारखाने, छोटे-बड़े कृषिक्षेत्र, छोटे-बड़े न्यायालय, मन्त्रणालय, राजदरबार, धारासभाएँ और संसदें एवं मठ-मन्दिर-चर्च-मसजिद-अग्निमन्दिर आदि आराधनस्थल यथायोग्य चलते हैं और सभी अपने-अपने क्षेत्रमें काम करनेमें लगे रहते हैं; परंतु मनुष्यकी हिंसापरायणताकी वृत्ति सभी क्षेत्रोंमें उसके प्रत्येक कार्य या साधनका प्रयोग करना चाहती है हिंसामें, उसका फल चाहती है हिंसावृत्तिकी सार्थकता, जिसका परिणाम है 'विनाश'। इसलिये मनुष्यको हिंसावृत्तिका सर्वथा परित्याग करके धर्मपरायण होना चाहिये।

याद रखो—धर्मपरायण होनेका अर्थ ही है—प्राणिमात्रके प्रति विशुद्ध अहिंसा और मैत्रीभावना एवं सदा सबका हित सोचने तथा हित करनेकी वृत्ति।

याद रखो—इस सर्वभूतहित-वृत्तिका होना ही मानवताकी सूचना है और इसीके विस्तारमें मानवता-विकास है। यही मानव-धर्म है।

सब रूपोंमें भगवान्‌को अनुभव करें

याद रखो—भगवान्‌के दो रूप हैं—एक समुद्रके गम्भीर तलकी भाँति सर्वथा प्रशान्त, क्रियागुणहीन, लीलातरंगशून्य और दूसरा है समुद्रकी विविध विचित्र तरंगोंकी भाँति नित्य अत्यन्त उच्छलित, नित्यनर्तनशील, नित्य लीलातरंगमय। प्रशान्त समुद्रतल तथा विविध तरंगस्वरूप समुद्र एक ही है और एकहीके ये दोनों रूप नित्य सत्य हैं—दोनों सदा-सर्वदा एक साथ रहते हैं। प्रशान्त-स्वरूप भी लीला है और अशान्त-स्वरूप भी लीला है। लीला ही लीलामय हैं; लीलामय ही लीला हैं। एकमें रस और आनन्द-स्वरूपनिष्ठ है, दूसरेमें रस और आनन्द उछल-उछलकर अपनी मधुरताका प्रदर्शन और वितरण कर रहा है।

याद रखो—तरंग कभी बड़ी भीषण होती है, कभी बड़ी कोमल होती है। कभी उसे देखते ही भय लगता है, कभी उसे देखते ही चित्त हर्षसे भर जाता है। कभी कोई तरंग सब कुछ बहा ले जाकर अपनेमें आत्मसात् कर लेती है, तटवर्ती पदार्थमात्रका अस्तित्व मिटा देती है। कभी कोई तरंग अपने कोमल शीतल सलिल संदोह-स्पर्शसे केवल अनिर्वचनीय अनुपमेय सुख ही नहीं देती, वरं समुद्रमें छिपे रत्नोंको बाहर फेंक जाती है। पर इन दोनों ही स्थितियोंमें लीलायमान है वह समुद्र ही, जो इस समय भी अपने तलसे सर्वथा प्रशान्त है।

याद रखो—ये तरंगे ही परमात्मा-समुद्रकी विविध विचित्र अनन्त निज शक्तियाँ हैं—जिनके महामाया, योगमाया, आत्ममाया, गुणमयी माया, मूलप्रकृति, द्विविध जीवभूता और अष्टधा-प्रकृति, दो प्रकारके पुरुष, प्रकृति, प्रकृतिविकृति आदि नाम हैं। इन शक्तियोंके द्वारा—भगवान् इनके रूपमें ही—कभी प्रकट, कभी गुप्त अनन्त विचित्र लीलाओंमें आत्मप्रकाश कर रहे हैं।

याद रखो—जगत्‌के प्रत्येक प्राणी-पदार्थ-परिस्थिति, जगत्‌का उदय और जगत्‌का विलय—सभी भगवान्‌का आत्मप्रकाश है। इन सबके रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हैं। यह समझकर सदा-सर्वदा—अपने सहित सबमें भगवान्‌को देखनेकी—छिपे भगवान्‌को प्रकट करनेकी इच्छा—चेष्टा करते रहो। यह प्रयास ही साधना है।

याद रखो—जिस पुरुषके जीवनमें इस साधनाका अंकुर उत्पन्न हो गया है, वह क्रमशः संसारकी ज्वाला-यन्त्रणा, पीड़ा-यातना, अशान्ति-असंतोष, ममता-मोह, मद-अभिमान, भय-विषाद आदिसे छूटकर प्रत्येक स्थितिमें और प्रत्येक अवसरपर भगवान्‌का अनुभव करने लगेगा और उसमें द्वन्द्वभावशून्य आत्यन्तिक सुख, शान्ति, संतोष, ज्ञान, भगवद्‌भाव, विनय, निर्भयता, नित्य परमानन्द, नित्य आत्मरति, नित्य जगत्-विस्मृति आदि सद्‌भाव-सद्‌गुणोंका उदय तथा उत्तरोत्तर संवर्धन होता रहेगा।

याद रखो—ऐसा साधक पुरुष जीवनके परम ध्येय—जो वस्तुतः उसे नित्य प्राप्त ही है—भगवान्‌को प्राप्तकर सफलजीवन हो जायगा। जगत्‌के समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिये सहज ही उसके अंदरसे ऐसे दिव्य अमृत-ज्योति विद्युत्कण निकलकर जगत्‌में प्रसरित होने लगेंगे, जिनके स्पर्शमात्रसे विष—तमोमय प्रपंचसे छूटकर जगत्‌के जीव भगवान्‌के अमृतमय दिव्य ज्योतिर्मय-स्वरूपभूत परमधामको प्राप्त करनेके अधिकारी बनने लगेंगे। यों तरनतारण बन जायगा वह भगवान्‌में स्थित साधक।

मनुष्यके दो बड़े शत्रु—राग और द्वेष

याद रखो—मनुष्यके दो बड़े शत्रु हैं, जो सदा साथ रहते हैं और जिनको हमने जीवनमें प्रमुख स्थान दे रखा है; यहाँतक कि हमारे प्रत्येक कार्य प्रायः उन्हीं दोनोंकी प्रेरणासे और उन्हीं दोनोंके नियन्त्रण-निरीक्षणमें होते हैं। वे शत्रु हैं—राग और द्वेष। अर्जुनसे श्रीकृष्णने कहा था—'प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें राग-द्वेष हैं, उनके वशमें मत होओ! वे दोनों तुम्हारे कल्याण-पथके शत्रु हैं।'

याद रखो—किसीका राग ही किसीके प्रति द्वेष होता है। हम किसी प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें राग रखते हैं तो उनका जो कुछ विरोधी होता है, उसके प्रति हमारा द्वेष होता है। द्वेषका बदला द्वेषसे मिलता है। जिसके मनमें द्वेष है, उसके मनमें नित्य जलन रहती है तथा वह सदा बुरी बातें—दूसरोंके अहितकी बातें ही सोचा करता है और जैसे मनके विचार होते हैं, वैसी ही क्रिया बनती है। फलतः द्वेष जीवनका स्वभाव बन जाता है।

याद रखो—जिन प्राणी, पदार्थ, परिस्थितियोंमें तुम्हारा राग है और जिनको तुम सदा अपनी ममताकी सीमामें रखना चाहते हो, वे कदापि सदा तुम्हारी नहीं रहेंगी, वे तुमसे अलग होंगी ही, तुमसे बिछुड़ेंगी ही और ममताकी वस्तुका वियोग होनेपर बड़ा दुःख होगा।

याद रखो—राग और द्वेष—दोनों ही चित्तमें अशान्ति रखते हैं तथा नयी-नयी अशान्ति पैदा करते रहते हैं। रागकी प्राप्त वस्तुओंको बनाये रखने तथा अप्राप्त वस्तुओंको पानेकी कामना रहती है और द्वेषकी वस्तुओंसे सर्वनाशकी। दोनों ही प्रकारकी कामनाएँ विवेकपर अज्ञानका पर्दा डाल देती हैं और अज्ञानवश

तुम अपना भविष्य सोचनेमें असमर्थ होकर ऐसे-ऐसे बुरे संकल्प तथा बुरे कार्य कर बैठते हो, जिनका परिणाम तुम्हारे लिये बहुत ही बुरा होता है। उस परिणामके भोगसे बच नहीं सकते। पीछे पछतानेसे कुछ फल होता नहीं।

याद रखो—तुम जिससे द्वेष करते हो, अवश्य ही उसमें तुम्हें दोष दिखायी देते हैं। यह नियम है, जिसमें द्वेष होगा, उसके गुण भी दोषरूप दिखायी देंगे और तुम्हें किसीमें दोष इसीसे दिखायी देते हैं कि तुम्हारे अंदर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें वे दोष हैं। जिसमें जो चीज न हो, उसको कहीं भी वह नहीं दीखती। छोटे बच्चेमें जबतक कामवासनाका ज्ञान नहीं होता, तबतक कोई कैसा ही आचरण उसके सामने करे, उसमें कोई वासना उसे नहीं दिखायी देगी; क्योंकि उसमें वह है नहीं। किसी दैवी सम्पदायुक्त महापुरुषमें यदि सर्वत्र सद्‌बुद्धि या भगवद्‌बुद्धिका उदय हो गया है तो उसकी दृष्टि सभीमें संत या भगवान्‌को देखेगी—महात्मामें भी और चोर-डाकूमें भी; क्योंकि उसके जीवनमें संत और भगवान् ही रह गये हैं। अतएव तुम किसीमें दोष देखते हो तो इससे सिद्ध होता है कि तुममें वह दोष है, इसलिये तुम पहले अपने दोषको देखो, उससे घृणा करो, उससे द्वेष करो और उसका नाश करनेके प्रयत्नमें लग जाओ।

याद रखो—तुम्हें जो कुछ अच्छा-बुरा फल मिल रहा है, उसका तुम्हारे जन्मसे पहले ही निर्माण हो चुका है और वह हुआ है उस न्यायपरायण निर्भ्रान्त दयामयी नियन्त्रण करनेवाली प्रभुशक्तिके द्वारा, जो तुम्हारे अपने ही किये हुए कर्मके परिणामके रूपमें तुम्हारे कल्याणके लिये उस फलका निर्माण करती है। दूसरा निमित्त बनकर अपना बुरा भले ही कर ले—तुम्हारे कर्मके बिना तुम्हारा बुरा वह नहीं कर सकता। अतएव तुम्हें जो फल मिल रहा है, इसके मूलमें तुम्हारा ही दोष है—

अपराध है; अतएव दूसरेको दोष देकर उससे द्वेष करना व्यर्थ है और नया पाप करना है।

याद रखो—महान् सत्य यह है कि समस्त चराचर भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है, उसके रूपमें भगवान् ही प्रकट हैं, फिर भगवान्‌से द्वेष कैसे किया जाय। उनका तो हर हालतमें पूजन-सम्मान ही करना है—

सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

भगवान्‌का प्रत्येक विधान परम मंगलमय और कल्याणप्रद है

याद रखो—भगवान्‌के मंगलविधानसे वही चीज तुमसे ली जा रही है, हटायी जा रही है, चाहे वह तुम्हें इस समय कितनी ही प्रिय आवश्यक प्रतीत होती हो, जिसका तुम्हारे पाससे चला जाना, हटाया जाना तुम्हारे भविष्यके कल्याणके लिये आवश्यक था और इसी प्रकार तुम्हें वही चीज दी जा रही है, चाहे वह तुम्हें अभी वांछनीय न हो—सर्वथा अप्रिय हो, जिससे तुम्हारा भविष्यमें कल्याण होनेवाला है। तुम इस रहस्यको नहीं जानते। पर लेन-देन करनेवाले प्रभु सर्वज्ञ हैं; वे वही करते हैं—वही वस्तु या परिस्थिति लेते-देते हैं, जिससे तुम्हारा मंगल होता हो; क्योंकि वे तुम्हारे सहज ही परम सुहृद् हैं।

याद रखो—यहाँकी चीजोंके मिलने-जानेमें परिस्थितिके परिवर्तनमें कोई भी हानि-लाभ नहीं है। यहाँ जो कुछ है—सब जानेवाला है—सब बदलनेवाला है। तुम मोहवश किसी वस्तु-परिस्थितिको अनुकूल मान लेते हो, किसीको प्रतिकूल समझ

लेते हो। अनुकूलको पकड़े रखना, प्राप्त करना चाहते हो; प्रतिकूलका परित्याग करने तथा न मिलनेकी इच्छा करते हो; पर तुम्हारा यह मनोरथ तुम्हारे लिये लाभदायक है या हानिकारक—इसे तुम वैसे ही नहीं जानते, जैसे भविष्यका ज्ञान तथा वास्तविक वस्तुस्थिति न जाननेवाला छोटा अबोध शिशु लाभ-हानि नहीं जानता और अमुक वस्तुको प्रिय मानकर लेना चाहता है और अमुकको अप्रिय मानकर फेंक देना चाहता है, भले ही वह प्रिय वस्तु अहितकर हो और अप्रिय वस्तु हितकर हो। परंतु वस्तुगुण तथा बच्चेकी यथार्थ आवश्यकता एवं उसके लाभ-हानिका ज्ञान रखनेवाली माता उसकी प्रिय वस्तुको हटा देती है और अप्रियको दे देती है; क्योंकि वह ज्ञानवती तथा स्नेहमयी उसकी सुहृद् है।

याद रखो—प्रभु भी परम सुहृद्‌के नाते प्रत्येक विधानमें हमारे वास्तविक कल्याणका ध्यान रखते हैं। इससे उनके प्रत्येक विधानका परिणाम निश्चय ही हमारे लिये परम मंगलमय और कल्याणप्रद ही होता है।

याद रखो—तुम्हें प्रभुने जो कुछ दिया है, उसकी मंगलमयतापर विश्वास रखकर तुमको प्रभुके प्रीत्यर्थ अपने जिम्मेका काम भलीभाँति पूरा करनेका प्रयत्न करना चाहिये। तुम्हारा काम निर्दोष प्रयत्न करना है, फलकी चिन्ता नहीं करनी है। निर्दोष प्रयत्नका अर्थ यही है कि तुम्हारे किसी भी कामसे दूसरे किसीका अहित न हो, यह ध्यान रहे; कर्म-सम्पादनमें सावधानी रहे और प्रमादवश—असावधानीवश कर्ममें भूल न हो।

याद रखो—यह लोक तुम्हारा नित्य निवासगृह नहीं है, यह तो यात्रा-पथ है। तुम एक यात्री हो और तुम्हें भगवान्‌के चरणोंमें या भगवान्‌के परमधाममें जाना है, जो तुम्हारा वास्तविक घर है। यहाँके सारे सम्बन्ध कल्पित हैं, आरोपित हैं। अतएव यहाँ न

तो कहीं किसी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें ममता करो, न किसीमें राग करो, न किसीमें द्वेष करो। अपनी यात्राकी स्थितिकी याद रखकर आगेकी तैयारी करो और लक्ष्यको न भूलकर निरन्तर उसी ओर चलते रहो। कहीं भी न अटको, न भटको। जो कुछ होता है, होने दो। एक बातका ध्यान रखो कि भगवान्‌की कभी विस्मृति न हो।

याद रखो—भगवान्‌की नित्य-निरन्तर स्मृति रखते हुए भगवान्‌की प्रीतिके लिये उनके मनोऽनुकूल कर्म करते रहना ही भगवान्‌की ओर चलना है। यहाँ आने, रहने, काम करने, सम्बन्धादि जोड़ने तथा कर्म करने—सबका एकमात्र उद्देश्य है। यह मानव-शरीर ही तुम्हारी आखिरी यात्रा हो और इसका अन्त भगवान्‌की प्राप्ति ही हो।

शास्त्रोक्त कर्म ही करने चाहिये

याद रखो—ये सब अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड भगवान्‌की लीला हैं। भगवान् ही सबके उपादान-कारण हैं और भगवान् ही निमित्तकारण हैं। वे अपने-आपसे ही अपने-आपमें अपने-आपके स्वरूपभूत लीला-उपादानोंसे लीला कर रहे हैं। भगवान्‌की यह लीला अनादि है।

याद रखो—भगवान्‌के तीन स्वरूप मुख्य हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। निर्गुण-निराकार ब्रह्म हैं, सगुण-निराकार परमात्मा हैं और सगुण-साकार भगवान् हैं। भगवान् तत्त्व-स्वरूपसे नित्य एक हैं। उनका सगुण-साकार स्वरूप भी निर्गुण-निराकार ही है; क्योंकि वह प्राकृतिक तथा पंचभूतात्मक न होकर भगवत्स्वरूप ही है।

याद रखो—एक ही भगवान् श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महादेवी दुर्गा आदि रूपोंमें नित्य लीलायमान हैं।

याद रखो—वे ही स्वयं चेतन-आत्मारूपमें जीवमात्रमें स्थित हैं। भगवान्‌की दृष्टिसे भगवान्‌के सिवा कुछ भी न है, न होता है, परंतु उन्हींकी लीलासे एक ही आत्मा अनन्त विविध विचित्र रूपोंमें 'प्रकृतिस्थ' जीवात्माके रूपमें वर्तमान है, जो प्रकृति-परवशताके कारण विभिन्न कर्म करता, विभिन्न सुख-दुःखोंको भोगता तथा विभिन्न योनियोंमें—लोक-परलोकमें भ्रमण करता है।

याद रखो—जबतक पुरुष 'प्रकृतिस्थ' है, तबतक उसका बार-बार जन्म-मरण होकर परलोक तथा पुनर्जन्मको प्राप्त होना अनिवार्य है। भगवान्‌की अनन्यभक्ति अथवा तत्त्वज्ञानसे जब प्रकृति-सम्बन्ध छूट जाता है, तब जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति मिल जाती है और भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिति हो जाती है। यही 'स्वस्थ' स्थिति है।

याद रखो—मुक्तिके दो स्वरूप हैं—कैवल्य-मुक्ति या नित्य सच्चिदानन्दस्वरूप भगवद्धामकी प्राप्ति। भगवद्धामकी प्राप्तिमें भी सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य आदि कई भेद हैं। प्रेमी भक्तगण इन मुक्तियोंमें किसीको स्वीकार न कर, प्रकृतिसे अतीत दिव्य 'भगवत्तत्त्वमय' प्राण, मन, देह आदिसे युक्त, प्रकृति-मुक्त स्थितिमें, नित्य-निरन्तर भगवत्सेवापरायण होकर अलौकिक भगवद्धाममें रहते हैं। ज्ञानी पुरुषके प्राण उत्क्रमण नहीं करते, उसको तत्काल 'कैवल्य-मुक्ति' मिल जाती है। यह 'सद्योमुक्ति' है। दूसरे ज्ञानपरायण तथा भक्त पुरुष देवयानमार्गसे जाकर क्रमशः मुक्त हो जाते हैं। ये भी वापस नहीं लौटते। पुण्यात्माजन पितृयानमार्गसे जाकर स्वर्गादि लोकोंमें वहाँके भोग भोगकर, पुण्य समाप्त होनेपर फिर मर्त्यलोकमें लौट आते हैं।

याद रखो—भगवान्‌के वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप आदि सभी एक ही महान् भगवत्स्वरूप नित्य परमधामके विभिन्न स्वरूप हैं, जो अनादि हैं तथा नित्य हैं। भगवान्‌की दो विभूतियाँ हैं—एकपाद्‌विभूति और त्रिपाद्‌विभूति। अनन्तकोटि विभिन्न ब्रह्माण्डोंसे युक्त प्रकृति एकपाद्‌विभूतिमें है। भगवान्‌का दिव्य परमधाम त्रिपाद्‌विभूतिमें है। यह प्रकृतिसे सर्वथा परे, इस लोकके सूर्य, चन्द्र और अग्निको सूर्यत्व, चन्द्रत्व और अग्नित्व प्रदान करनेवाला, अनन्तकोटि दिव्य सूर्य, चन्द्र अग्निकी ज्योतिर्मय शीतल स्निग्ध प्रभासे विभूषित, प्रलयहीन, अमृत, अनन्त, शाश्वत, शुद्ध, सत्त्वमय, अज, अक्षर तथा परम सौन्दर्यनिकेतन परमानन्दधाम है। वह सभी दशाओं, स्थितियों, आवरणोंसे मुक्त है। अतएव प्रकृति-राज्यसे सर्वथा अतीत विशुद्ध भगवत्-राज्यमें प्रवेश होनेपर ही इनका रहस्य, रूप और तत्त्व समझमें आ सकता है। प्राकृतिक बुद्धि वहाँतक पहुँच ही नहीं सकती।

याद रखो—पापका आचरण करनेवाले लोग नरकोंमें जाते हैं और वहाँ 'यातना-शरीर' पाकर भाँति-भाँतिकी यन्त्रणा भोगते हैं। नरक रूपक या कल्पना नहीं हैं—सत्य हैं। नरक-भोगके अनन्तर या पहले ही कर्मानुसार पापीजनोंको आसुरीयोनि—कूकर-सूकर, शृगाल आदि योनियोंमें जन्म लेकर वहाँ दुःख भोगने पड़ते हैं। मनुष्य-जन्म होता है तो वहाँ भी उन पापाचारियोंको नित्य रोगग्रस्त तथा विविध अभावोंसे पीड़ित रहना पड़ता है।

याद रखो—पापकर्मा जीव कर्मवश प्रेत होते हैं। यद्यपि प्रेतोंके नामपर ठगी, दम्भ, जालसाजी बहुत चलती है, पर वास्तवमें प्रेतयोनि सत्य तथ्य है और उससे छुटकारेके उपाय हैं—गायत्री-पुरश्चरण, श्रीमद्‌भागवतका सप्ताह-पाठ, भगवान्

शंकरकी उपासना, भगवन्नाम-जप-कीर्तन आदि। मृतक-श्राद्ध विधिवत् अवश्य करना चाहिये। पिण्डदान, नियमित श्राद्ध, तर्पण आदिसे भी प्रेतयोनिसे छुटकारा मिल जाता है। कम-से-कम, वहाँके कष्ट कम हो जाते हैं और प्रेतत्वकी अवधि घट जाती है। श्राद्ध-तर्पण और पिण्डदानादि न करनेपर प्रेतयोनिकी प्राप्ति, उसकी अवधि-वृद्धि और यन्त्रणाओंकी वृद्धि होती है।

याद रखो—इसी प्रकार 'प्रेतबाधा' भी होती है—यद्यपि इस क्षेत्रमें भी मिथ्यावाद, ढोंग, ठगी, बदमाशी बहुत चलती है। कहीं हिस्टीरिया आदि रोगोंको भी प्रेतबाधा मान लिया जाता है। तथापि प्रेतबाधा सचमुच होती भी है। उसका निवारण अखण्ड भगवन्नामकीर्तन, भागवतपाठ, गायत्रीजप आदिसे होता है।

याद रखो—मनुष्यकी उच्च-नीच गतिमें, परलोक-पुनर्जन्मकी विविधतामें और सुख-दुःखादिकी प्राप्तिमें उसके अपने किये हुए कर्म ही कारण हैं। अतएव सदा-सर्वदा शास्त्रोक्त वैध कर्म ही करने चाहिये। मन, वाणी और शरीरसे सभी ऐसे सत्कर्म करने चाहिये, जो किसी भी जीवका अनिष्ट न करनेवाले हों, सबका हित करनेवाले हों और शास्त्रोक्त हों। जिस कर्मसे दूसरोंका अहित होता है, उससे अपना हित कभी नहीं हो सकता।

याद रखो—कर्मका फल यहाँके बीज-फल-न्यायके अनुसार ही होता है। थोड़ा-सा बीज बोते हैं—उसके फलस्वरूप अनन्तगुना अनाज पैदा होता है। इसी प्रकार छोटे-से बुरे कर्मोंका फल दीर्घकालीन नरक या नारकी योनिकी प्राप्ति एवं थोड़े-से पुण्य-कर्मोंका फल दीर्घकालीन स्वर्गादि-सुख तथा शुभ योनियोंकी प्राप्ति होती है। अतएव मनुष्यको सदा-सर्वदा सत्कर्म ही करने चाहिये।

याद रखो—सत्कर्म यदि निष्कामभावसे, भगवत्प्रीत्यर्थ, भगवान्‌की पूजाके स्वरूपमें किये जाते हैं तो उनका फल मोक्ष या भगवत्प्राप्ति होता है। अतएव प्रत्येक सत्कर्मके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेका भाव रखना चाहिये।

याद रखो—भूर्लोक, भुवर्लोक, महर्लोक, जनलोक और ब्रह्म या सत्यलोक ऊपरके हैं तथा अतल, तलातल, वितल, सुतल, महातल, रसातल और पाताल नीचेके लोक हैं। भुवर्लोकमें ही स्वर्ग, पितृलोक, यमलोक आदि हैं। इन सबकी स्वरूप-स्थितिमें उच्च-नीचका महान् अन्तर है तथापि ये हैं सभी प्रकृतिराज्यमें ही। ब्रह्मलोकतक पहुँचा हुआ प्राणी भी वापस आ सकता है। केवल भगवत्प्राप्त पुरुष—'कैवल्य मोक्ष' को या 'भगवान्‌के परमधाम' को प्राप्त पुरुष ही वापस जन्म-मृत्युके चक्रमें नहीं लौटता।

याद रखो—एक मनुष्य-शरीर ही ऐसा है, जो मोक्ष या भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिलता है। नारकी प्राणी भी मनुष्ययोनिमें आकर कर्मफलरूप दुःख भोगता हुआ भी यदि भगवान्‌का भजन करता है और प्रत्येक फलभोगमें भगवान्‌का मंगल-विधान मानकर प्रसन्न होता एवं प्रत्येक छोटे-बड़े सत्कर्मको भगवान्‌की प्रीतिके लिये करता है तो वह भी भगवान्‌को प्राप्त होकर मनुष्य-जीवनको सफल करता है।

याद रखो—मानव-जीवन भोगोंके लिये है ही नहीं; मानव-जीवनको जो भोगोंमें खो देता है—भोगोंके अर्जन तथा उनके उपभोगमें—वह निरन्तर चिन्ताग्रस्त, अशान्त-चित्त तो रहता ही है, भोगासक्तिके कारण नये-नये प्रच्छन्न पाप करता है, जिनका फल उसके भविष्यको बिगाड़ देता है। वह बार-बार नरकों तथा आसुरी योनियोंमें जाता है। अतएव मानव-जीवनका प्रत्येक क्षण

केवल भगवान्की सेवामें ही लगना चाहिये, भोग-सेवनमें कदापि नहीं, तभी भगवत्प्राप्ति होगी, जो मानव-जीवनकी परम और चरम सफलता है।

भगवान् और भोग

याद रखो—मनुष्यका सहज स्वाभाविक लक्ष्य है—परम शान्ति और आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति। वह चाहे इस लक्ष्यको व्यक्त न कर सके, पर उसका प्रत्येक विचार और प्रयत्न होता है इसीके लिये। यह होते हुए भी वह परम शान्तिके स्थानपर दारुण अशान्ति और आत्यन्तिक सुखके स्थानपर पाता है—घोर दुःख। इसका कारण यही है कि वह शान्ति और सुखकी खोज करता है—उन्हें पाना चाहता है—अनित्य, अपूर्ण, परिवर्तनशील, अल्प और प्रतिक्षण विनाशकी ओर जानेवाले प्राकृत पदार्थों और परिस्थितियोंसे।

याद रखो—जो वस्तु अपूर्ण, अल्प और अनित्य होती है, वह कदापि शान्ति नहीं दे सकती। चित्त सदा ही पूर्णताकी कामनासे और विनाशके भयसे व्याकुल तथा अशान्त रहता है और जहाँ अशान्ति है, वहाँ सुख कहाँ? '**अशान्तस्य कुतः सुखम्।**'

याद रखो—इस अशान्त चित्तको लेकर वह सुखकी कामनासे बार-बार प्राकृत जगत्में ही सुख पानेका प्रयास करता है—परिणामस्वरूप उसके दुःख विभिन्न प्रकारों और विविध रूपोंमें बढ़ते चले जाते हैं। तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। कामना और तृष्णासे विवेक नष्ट हो जाता है और वह फिर बुद्धिभ्रष्ट होकर ऐसे-ऐसे कर्म करने लगता है, जिनका परिणाम

अधिक-से-अधिक अशान्ति और अधिक-से-अधिक दुःखके रूपमें प्रकट होता है। प्राकृत ऐश्वर्य-अधिकार आदि भोग अन्तरमें निरन्तर अशान्तिकी भीषण आग जलाये रखते हैं—न मिलनेपर भी और बहुत मिलनेपर भी। अतएव शान्ति-सुखके लिये मनुष्य जबतक भोगसुखकी भ्रान्तिसे छूटकर नित्य, पूर्ण, असीम, सर्वथा, मधुमय भगवान्‌की खोज नहीं करता, तबतक उसकी अशान्ति और दुःखका अवसान कभी नहीं होता।

याद रखो—प्राकृत जगत्‌के जितने भी भोग हैं, वे वास्तवमें आपात-मधुर या पयोमुख विषकुम्भ (जहरसे भरे दुधमुँहे घड़े)-के सदृश हैं; अथवा भीतरके निरन्तर बढ़ते हुए भयानक घावको छिपानेवाले बाहरी चमकदार पर्देके समान हैं। अतएव इनका मोह छोड़ो और नित्य सत्य भगवान्‌को प्राप्त करनेका प्रयास करो। भगवान् नित्य अनन्त परम शान्ति और अनन्त असीम आत्यन्तिक सुखके परिमाणरहित समुद्र हैं। उनको प्राप्त करनेकी इच्छाके साथ ही शान्ति-सुख आने लगते हैं।

याद रखो—भगवान् सदा तुम्हारे अपने हैं, भोग कदापि अपने नहीं हैं। भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं, भोग कभी नित्यके साथी नहीं हैं। भगवान् नित्य पूर्ण तथा सुख-शान्तिस्वरूप हैं, भोग अनित्य, अपूर्ण तथा दुःख-अशान्तिमय हैं। भगवान्‌की प्राप्तिमें कर्मकी अपेक्षा नहीं है, भोगकी प्राप्ति कर्मसापेक्ष है। भगवान्‌की प्राप्तिके प्रयाससे पाप कटने लगते हैं और नये पाप बनते नहीं, भोगप्राप्तिके प्रयासमें पाप सुरक्षित रहते हैं और नये-नये पाप बढ़ते रहते हैं।

याद रखो—वास्तवमें बुद्धिमान्, सौभाग्यशाली पुण्यजीवन और सुखी पुरुष वही है, जो भोगोंका मोह त्यागकर भगवान्‌को ही जीवनका परम लक्ष्य मानकर उन्हींका भजन करता है।

जीवनके दिन बीते जा रहे हैं, मृत्यु समीप आ रही है। अतएव अशान्ति तथा दुःखके दलदलसे निकलकर नित्य सत्य भगवान्‌के भजनमें लग जाओ और मानव-जीवनको सार्थक करो।

मानव-जीवनकी सफलता

याद रखो—मनुष्य भौतिक जगत्‌में भौतिक लाभोंको ही परम लाभ मानकर जब कर्म करता है, तब उसमें विलासप्रियता, इन्द्रिय-तृप्तिकी अदम्य इच्छा, भोगोंकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कामना—तृष्णा, मोह, लोभ, द्वेष, क्रोध, कलह, हिंसा आदि दोष उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं। फलतः जीवनमें असंयम, अधीरता, अनियमितता और नित्य बढ़नेवाली घोर अशान्ति आदि आ जाते हैं और वह भौतिक उन्नतिमें सफल होते हुए भी सर्वथा असफल तथा संतप्त-जीवन ही रहता है। इसी स्थितिमें उसकी मृत्यु हो जाती है और वह अपने पूर्वकर्मजनित संस्कारोंके अनुसार ही परलोक तथा पुनर्जन्मोंमें बार-बार दुःख भोगता तथा भटकता रहता है। वह मानव-जीवनकी बड़ी असफलता है, जो जीवनके दुरुपयोगके परिणाममें प्राप्त होती है।

याद रखो—जिस मनुष्यके जीवनका लक्ष्य अध्यात्म होता है, वह भौतिक-जगत्‌में यथायोग्य कर्तव्यपालन करता हुआ भी त्याग, इन्द्रियसुखकी इच्छाके अभाव, भोगवासनासे निवृत्ति, विवेक-वैराग्य, प्रेम, सेवा, परदुःख-निवारणार्थ निजसुखदान, भगवान्‌में प्रीति, सर्वत्र आत्मदर्शन आदि सद्‌गुणोंसे अपनी योग्यता, स्थिति और भावनाके अनुसार सम्पन्न होता है और उसके जीवनमें सहज ही संयम, धैर्य, नियमितता आदिका विकास तथा परम शाश्वती शान्तिका प्रादुर्भाव होने लगता है

और भौतिक जगत्‌की किसी भी उच्च-नीच परिस्थितिमें रहते हुए ही वह परम सुखी तथा संतुष्ट-जीवन होता है। इस स्थितिमें उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह जीवनकी परम सफलतारूप भगवत्प्राप्ति या कैवल्य-मुक्तिको प्राप्त होता है अथवा साधन अपरिपक्व रह गया हो तो योगभ्रष्टको प्राप्त होनेवाले शुभ दैवी मानवकुलमें पुनः उत्पन्न होकर वह पूर्वाभ्यासवश साधनामें सहज ही प्रवृत्त हो जाता है और परिपक्व-साधन बनकर इस जीवनमें भगवत्प्राप्ति या मुक्तिकी उपलब्धि करता है। यही मानव-जीवनका सदुपयोग है और यही जीवनकी वास्तविक परम सार्थकता और सफलता है।

याद रखो—मानव-जीवन मिला ही है आध्यात्मिक उन्नति करते हुए भगवत्प्राप्तिरूप परम सफलताके लिये। जीवनके इस यथार्थ लक्ष्यको भूलकर जो केवल भौतिक लाभके लिये ही निरन्तर व्यस्त रहता है, वह बहुत बड़ा प्रमाद करता है और लक्ष्य-भ्रष्ट होकर अपना भविष्य बिगाड़ लेता है। ऐसे ही मानवोंके लिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'ऐसे लोग अपनेको ही श्रेष्ठ मानकर प्रमाद करते, धन तथा मानके मदमें चूर रहते, दम्भपूर्ण यज्ञ-सेवा आदिके द्वारा यजन करते हैं। ऐसे द्वेषभाव रखनेवाले क्रूर स्वभाव, पापाचारी नराधमोंको मैं (भगवान्)बार-बार सूअर, गधे, पिशाच आदिकी आसुरी योनियोंमें डालता हूँ। अर्जुन! ऐसे मूढ़ जीव जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं और मुझको (भगवान्‌को) न प्राप्त होकर आसुरी योनिसे भी नीच (घोर नरक आदि) गतिमें ही जाते हैं।' यही मानव-जीवनका घोर दुष्परिणाम है।

याद रखो—इस घोर दुष्परिणामसे बचनेके लिये भगवत्कृपाका आश्रय लेकर जीवनको पवित्र आचरणोंसे तथा त्याग-वैराग्य-

भक्ति-ज्ञानसे युक्त विशुद्ध आध्यात्मिक बनाना चाहिये और इस अध्यात्ममें स्थित रहकर ही अपने प्रत्येक कर्मके द्वारा भगवान्का पूजन करना चाहिये। इसीसे जीवन सफल होगा।

जीवनमें विचारोंका महत्त्व

याद रखो—विचारोंमें अपार शक्ति है। हमारे विचार जैसे होंगे, वैसे ही हम बनेंगे। वैसा ही हमारा वातावरण बन जायगा। विचारोंका प्रभाव मनपर भी पड़ेगा। हमारे विचारोंमें यदि प्रेम, त्याग, विनय, क्षमा और दूसरोंके गुण देखनेकी दृष्टि है तो इससे मनमें तो शान्ति तथा शान्तिजनित सुख रहेगा ही, शरीरमें भी पाचनशक्ति बढ़ेगी, रक्तका संचरण नियमित होगा, यकृतका कार्य व्यवस्थित होगा, दाहका कोई रोग नहीं होगा और आरामसे नींद आयेगी। इसी प्रकार यदि हमारे विचारोंमें घृणा, भोगासक्ति, अभिमान और परदोष-दर्शनकी परम्परा रहेगी तो मन निश्चय ही अशान्त रहेगा। अशान्तिसे दुःख होगा ही और शरीरमें भी बीमारियाँ पैदा होंगी—पाचनशक्ति नष्ट हो जायगी, हृदयमें तथा उदरमें जलन होगी, पेटमें घाव हो जायँगे, यकृतका कार्य बिगड़ जायगा और हृदयकी क्रियाशक्ति अव्यवस्थित रहेगी।

याद रखो—हमारे पास जो कुछ होगा, वही हम दूसरोंको देंगे और वही बीजसे फलकी भाँति अनन्तगुणा होकर हमें वापस मिल जायगा। हमारे विचारोंमें यदि घृणा है तो हम दूसरे पुरुषसे घृणा करेंगे, उसके दोष ही देखेंगे, बदलेमें वह भी हमसे घृणा करेगा और हमारे दोष देखेगा। फलतः हममें कटुता, कलह, क्लेश बढ़ जायँगे।

याद रखो—हम यदि किसीमें बुराई देखते हैं और उससे घृणा करते हैं तो उस पुरुषको उतनी ही बुराई तथा घृणा देते

हैं। उसमें यदि बुराई तथा घृणा नहीं हैं तो पैदा हो जाती हैं और कुछ हैं तो वे बढ़ जाती हैं। अतएव हम उसमें घृणा, बुराई आदि दोष बढ़ानेका पाप करते हैं और बुरे विचारोंका बार-बार स्मरण होनेपर तथा उसके विचारोंमें भी हमारे प्रति घृणा-बुराईके विचार बढ़ जानेपर हमारे अंदर इन विकारोंकी अपार वृद्धि होती है। इस प्रकार दूसरोंसे घृणा करके तथा उनमें बुराई देखकर हम उनका तथा अपना दोनोंका ही बुरा करते हैं।

याद रखो—हमारे विचारके अनुसार यदि हम प्रत्येक प्राणीमें भगवान्‌को देखनेका अभ्यास करेंगे तो हमारे विचार और भी पुष्ट होंगे और सबके साथ हमारा व्यवहार-बर्ताव निर्दोष तथा सुन्दर हो जायगा एवं हमारे प्रति उन सबके विचारोंमें भी न्यूनाधिकरूपसे यही बात होगी, इससे उनका व्यवहार-बर्ताव भी सुधरेगा। तब भगवद्‌भावकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे हमारे कर्म क्रमशः पवित्र-से-पवित्र होते जायँगे और हमारे जीवनकी गति निश्चित भगवान्‌की ओर हो जायगी, जो मानव-जीवनका एकमात्र परम कर्तव्य है।

याद रखो—बुरे विचारोंसे भयानक विष-वृक्ष पैदा होता है; क्योंकि वे वस्तुतः विष-बीज हैं। उस विषकी बढ़ी हुई ज्वाला वापस आकर हमारे हृदयमें भयानक घाव करके इतनी जलन पैदा कर देगी कि हम उसे सह नहीं सकेंगे और उस अवस्थामें भी दूसरोंमें बुराई देखकर उनपर दोषारोपण करते हुए अपनी बुराई और तज्जनित दुःख-दाहको बढ़ाते रहेंगे। अतएव किसीमें बुराई मत देखो, किसीसे घृणा मत करो, किसीकी निन्दा न करो, सबसे प्रेम करो। कोई तुमसे घृणा-बुराई करे तो उसका उत्तर प्रेमसे दो। घृणा-बुराईका उत्तर घृणा-बुराईसे देना तो जलती अग्निमें तेजाब मिला ईंधन डालना है।

याद रखो—हम हर हालतमें सबसे प्रेम करेंगे तो हमारे हृदयमें प्रेम तथा तज्जनित शान्ति-सुखकी सुधा-सरिता बहने लगेगी, जो हमारे साथ ही हमारे सम्पर्कमें आनेवाले सबको शान्ति-सुधाका पान करवाकर तृप्त तथा सुखी बना देगी।

याद रखो—अपनी ओरसे अपने मनमें दूषित विचार तो कभी आने ही मत दो। दूसरोंकी बुराईका उत्तर भी सदा भलाईसे दो; क्रोधका उत्तर क्षमासे दो, दुष्टताका उत्तर दयालुतासे दो, हानिका उत्तर लाभसे दो, अपमानका उत्तर मानसे दो, अभिमानका उत्तर सम्मानसे दो, असुरताका उत्तर देवत्वसे दो। यह कभी मत समझो कि इससे तुम्हारी हानि होगी। शुभका फल निश्चय शुभ ही होगा। बीजके अनुसार ही फल होता है। अपने कोमल करोंसे सबको हृदयसे लगाओ, अपनी अभय वाणीसे दूसरोंका भय दूर करो, अपने मीठे वचनोंसे सबको सान्त्वना तथा शान्ति दो। नरक-तुल्य जगत्को अपने तन-मन-वचनके सच्चे साधु-व्यवहारसे स्वर्ग—दिव्य-आनन्दधाम बना दो।

भोगकामनाके त्यागका उपाय

याद रखो—जिसका चित्त अशान्त, सदा क्षुब्ध है वह चाहे किसी भी ऊँची-से-ऊँची स्थितिमें हो, कभी सुखी नहीं हो सकता। मरते समय अन्तिम श्वासतक उसका चित्त अशान्त रहता है, फलतः वह दुःखी ही रहता है और यह अशान्ति तबतक मिट नहीं सकती, जबतक मनमें सांसारिक भोगोंकी—पदार्थों और परिस्थितियोंकी कामना है।

याद रखो—कामनाकी उत्पत्ति होती है आसक्तिसे। भोगासक्ति ही भोग-कामनाका उत्पत्तिक्षेत्र है। भोगासक्ति तबतक बनी रहती

है, जबतक भोगोंमें सुखकी सम्भावना दीखती है। भोगसुखकी यह आस्था सर्वथा भ्रममूलक ही है; क्योंकि हम देखते हैं कि भोगप्राप्तिकी इच्छा होते ही जलन—दुःख आरम्भ हो जाता है। भोगोंकी प्राप्तिमें दुःख होता है, भोग प्राप्त होनेपर दूसरोंके पास अपनेसे अधिक भोग देखकर दुःख होता है, भोगकी शक्ति न रहनेपर दुःख होता है, भोगनाशमें दुःख होता और भोगपदार्थोंको छोड़कर मर जानेमें दुःख होता है—इस प्रकार भोगमें दुःख-ही-दुःख है। इनमें सुख मानना सर्वथा भ्रम है, पर यह भ्रम जबतक बना है, तबतक दुःखपरिणामिनी भोगकामना बनी ही रहेगी।

याद रखो—जो मनुष्य विवेकके द्वारा अनित्य तथा अपूर्ण भोगोंमें दुःखका अनुभव करता है, उसके मनसे भोगकामना दूर हो जाती है। फिर वह भोगकी प्रतीक्षामें नहीं रहता। उसकी शान्ति तथा सुख भोगाधीन नहीं रहते। वह नित्य अपने आत्माकी शान्तिमें ही स्थित रहता है। उसे भोगस्पृहा नहीं होती, भोगोंमें ममता नहीं होती तथा दुःखमय जान लेनेपर भोगप्राप्तिमें अभिमान नहीं होता। इससे उसकी शान्ति स्वाभाविक तथा शाश्वती हो जाती है और फलतः वह नित्य सत्य अपरिवर्तनशील परम आनन्दका अनुभव करता है।

याद रखो—किसी भी ऊँचे-से-ऊँचे सम्राट्के पदमें, राष्ट्रकी अध्यक्षताके पदमें, ज्ञान-विज्ञान-ऐश्वर्यकी प्रचुरता तथा तज्जनित यश-कीर्तिमें, विद्या-बुद्धिकी विशालतामें और देवत्व-पदमें भी शान्ति तथा सुख नहीं है, यदि मनमें भोगकामना बनी है। कामना-जगत्में ऐसे पुरुषोंकी कामना विशेष बढ़ जाती है और उन्हें पद-पदपर प्राप्त भोगके नाशका भय, विशेष प्राप्त करनेकी चिन्ता, न मिलनेपर भयंकर विषाद बना रहता है। उनके द्वारा उन प्राप्त भोगोंका दुरुपयोग होता है, उनसे नये-नये अपराध

बनते हैं और परिणामस्वरूप उन्हें बलात् अधोगतिमें जाना पड़ता है। अतः प्रत्येक दृष्टिसे भोग-कामनाका त्याग आवश्यक है।

याद रखो—कामनाके त्यागका तथा परम शान्तिकी प्राप्तिका, बड़ा सहज, सरल और आनन्दपूर्ण साधन है—भगवान्‌की मंगलमयतामें उनके मंगलविधानमें विश्वास। हमारे लिये जो कुछ भी फलविधान होता है, वह उस नियन्त्रण करनेवाली भोग-विधायिनी भागवती शक्तिसे होता है। वह भागवती शक्ति भगवान्‌की सहज करुणासे पूर्ण होती है, अतएव उसका प्रत्येक विधान करुणामय भगवान्‌के जीवमात्रके प्रति रहनेवाले सहज सौहार्दसे सम्पन्न होता है। हमारे उन सहज परम सुहृद् भगवान्‌की कृपासे हमारे लिये जो कुछ भी विधान होता है, वह निश्चय ही परम मंगलमय है। दीखनेमें कहीं भयानक दीखनेपर भी हमारा निश्चित परम कल्याण करनेवाला है। यह विश्वास होते ही परम शान्ति मिल जाती है और जहाँ शान्ति आयी कि वह परम सुख अपने-आप प्रकट हो जाता है, जो नित्य सत्य, अखण्ड और असीम है।

परदोष-दर्शन न करें

याद रखो—भगवान्‌ने जितने भी प्राणी-पदार्थोंकी रचना—सृष्टि की है, सबमें कुछ-न-कुछ गुण अवश्य वर्तमान हैं। गुण देखनेवालोंको गुण मिलते हैं। अतएव प्रत्येक प्राणी-पदार्थमें गुण देखनेकी चेष्टा करो। अभी जो हमें सबके दोष दीखते हैं, इसका प्रधान कारण है—हमारी दोष-दृष्टि। हमारी दृष्टिमें ही दोष भरे हैं, इससे हमें सभीमें दोष-ही-दोष दिखायी देते हैं; गुणकी ओर हमारी दृष्टि जाती ही नहीं।

याद रखो—हमें अपना यह दृष्टिकोण ही बदलना पड़ेगा, इस दृष्टिदोषको ही मिटाना होगा। जहाँ गुण-दृष्टि हुई कि हमें सबमें गुण-ही-गुण दिखायी देने लगेंगे।

याद रखो—हमारी दृष्टिमें राग-द्वेषके कारण भी वस्तुका यथार्थ रूप दिखायी नहीं देता। जिस प्राणी-पदार्थमें राग होता है, उसके दोषमें भी गुण दीखते हैं और जिस प्राणी-पदार्थसे द्वेष होता है, उसकी विस्तृत गुणावलीमें भी दोष दिखायी देते हैं। राग-द्वेष कभी भी वस्तुके यथार्थ स्वरूपका दर्शनज्ञान नहीं होने देते। इसलिये चित्तको राग-द्वेषरहित करना पड़ेगा।

याद रखो—जहाँ दृष्टिमें दोष देखनेकी प्रवृत्ति हो गयी है, वहाँ राग बहुत कम रहता है और द्वेष बहुत ज्यादा; क्योंकि जिसमें दोष-ही-दोष दीखते हैं, उससे द्वेष उत्पन्न हो जाता है तथा द्वेष होनेपर दोषदृष्टि और भी प्रबल तथा सुदृढ़ हो जाती है। ऐसी अवस्थामें सदाचार तथा सद्‌गुणोंमें भी सद्‌वृत्ति और सत्यव्यवहारमें भी, यहाँतक कि संतोंमें और भगवान्‌में भी दोष दीखने लगते हैं। जगत्‌में लोग जो भगवान्‌की, संतोंकी, सदाचार तथा सद्‌गुणोंकी सद्‌वृत्ति और सत्यव्यवहारकी भी निन्दा करते देखे जाते हैं, इसका प्रधान कारण है—उनकी बद्धमूल दोष-दृष्टि।

याद रखो—मनुष्यको दूसरोंमें जितने अधिक दोष दिखायी देते हैं, उतना ही अधिक दोषोंका चिन्तन होता है। जैसा सतत चिन्तन होता है, वैसा ही अन्तःकरणका रूप बन जाता है और फलतः दोषोंका चिन्तन करते-करते उसके अपने जीवनमें वे ही दोष आ जाते हैं। फिर तो बाहर-भीतर दोषोंका ही वातावरण बन जाता है और मनुष्यका अनायास ही पतन हो जाता है।

याद रखो—इस दोष-दृष्टिका जबतक मूलोच्छेदन नहीं होगा, तबतक पतनकी ओर गति बनी ही रहेगी। इसलिये इसका

नाश करना परम आवश्यक है। दोष-दृष्टिका नाश होता है गुण-दृष्टिसे। अतः ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे हमारी वृत्ति जहाँ दोष देखती है, वहाँ वह गुण खोजनेमें लग जाय। यह निश्चित है कि खोजनेपर गुण निश्चय ही मिल जायँगे; क्योंकि इस जीव-जगत्में प्रत्येक प्राणी-पदार्थमें न्यूनाधिकरूपमें सत्त्व, रज, तम—तीनों गुण रहते हैं। हम किसीके सत्त्वकी ओर देखेंगे तो हमें उसमें गुण दिखायी देने लगेंगे और जितना हम उसमें गुण देखकर—सात्त्विकता देखकर उसके गुणोंका—सात्त्विकताका विचार करेंगे, हमारे विचार उसके हृदयमें जाकर उसकी सात्त्विकताको और भी बढ़ायेंगे। हमारे विचार जितने ही अधिक सुपुष्ट, प्रबल, विशद तथा दृढ़ होंगे, उतनी ही उसकी सात्त्विकता अधिक बढ़ेगी। फलतः क्रमशः उसका जीवन सात्त्विकताकी—सद्गुणोंकी अधिकतासे भरता जायगा और उसके दोषोंका मूलोच्छेद होने लगेगा। अतएव कभी किसीके दोष न देखकर सदा सबमें गुण देखनेका ही अभ्यास तथा प्रयास करना चाहिये, इसीमें अपना और उसका हित है।

याद रखो—परमार्थके साधकके लिये तो परदोष-दर्शन बहुत बड़ा साधनका विघ्न है। वस्तुतः साधकको पराये दोष-गुण दोनों ही नहीं देखने चाहिये, परंतु दोष तो कभी भी नहीं देखने चाहिये।

ममताके केन्द्र केवल भगवान् बन जायँ

याद रखो—शरीर पांचभौतिक है। माताके उदरमें रज और वीर्यसे इसका निर्माण हुआ है। यह अनित्य है। इसकी उत्पत्ति होती ही है नाशके लिये। आत्मा अमर है, वह नित्य है, सत्य

है। शरीरका जन्म होता है, आत्माका नहीं। आत्मा तो चेतन-जीव-रूपसे उसमें प्रविष्ट होता है। इसी प्रकार मृत्यु इस शरीरकी होती है—जीव-चेतनरूप आत्माकी नहीं। परंतु जबतक यह आत्मा जीव-चेतनरूपसे इस शरीर तथा शरीरके नाममें 'मैं-पन', इसकी ममताके प्राणिपदार्थोंमें 'मेरापन' रखता है, तबतक जन्म-मृत्युके क्लेशसे मुक्त नहीं होता।

याद रखो—इस क्लेशसे मुक्त होनेका साधन भी यह शरीर ही है। यदि जीव-चेतन शरीर तथा नाममें 'मैं-पन' एवं प्राणिपदार्थोंमें 'मेरापन' न रखे—(जो वास्तवमें है ही नहीं, केवल मिथ्या आरोप या कल्पना मात्र है—) और नित्य सत्य मुक्त अमृतरूप आत्मामें स्थित हो जाय तो प्रकृतिसे—बन्धनसे छूटकर सदाके लिये जन्म-मृत्युके क्लेशसे मुक्त हो सकता है।

याद रखो—माया बड़ी प्रबल है; वह जीवको भुलाये रखती है। इसीलिये जीव शरीर, नाम तथा प्राणिपदार्थोंसे अहंता-ममता हटानेकी बात तो सोचता ही नहीं, उलटा अधिक-अधिक अपने इस भ्रमको परम सत्य मानकर राग-द्वेषमें फँसता चला जाता है और शरीर तथा नामके लिये नये-नये पापकर्म करता रहता है। जीवनके नपे-तुले श्वास इसीमें बीत जाते हैं। काम-क्रोध-लोभ-परायण होकर वह मृत्युपर्यन्त चिन्ता, अशान्ति, दुःख तथा अभावका अनुभव करता हुआ पापकर्मकी भारी राशि लेकर उसका कुफल भोगनेके लिये इस शरीरको त्यागकर अन्यान्य आसुरी योनि अथवा अधम गतिमें चला जाता है। यों जीव आया तो था मानव-शरीरमें मोक्षका साधन करके मुक्त होनेके लिये, सो तो हुआ ही नहीं; उलटे नरकों तथा नीच योनियोंका अधिकारी बनकर चला जाता है। यह बहुत बड़े पश्चात्ताप तथा दुःखका विषय है।

याद रखो—बीता हुआ समय फिर हाथ आता नहीं; अतः मानव-जीवनका एक-एक क्षण बड़ी सावधानीके साथ आत्मोपलब्धि, भगवत्प्राप्ति या मुक्तिके साधनोंमें ही लगाओ। जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चेतना हमें प्राप्त हैं, उन सबके द्वारा भोगोंका परित्याग करके भगवान्का सेवन करो। हमारा सम्बन्ध अनात्मरूप भोग-जगत्से छूटकर एकमात्र आत्मासे या भगवान्से ही हो जाय। है तो अब भी वही, पर हम उसे भूलकर अज्ञानवश अनात्मसे सम्बन्धित हो रहे हैं। मिथ्या होनेपर भी जबतक यह है, तबतक हमको—प्रकृतिस्थ पुरुषरूप जीव-चेतनको कर्मानुसार जन्म-मृत्युके चक्रमें तथा विविध योनियोंमें भटकना पड़ेगा ही। इसलिये इसमें जरा भी प्रमाद मत करो। एक क्षण भी अन्य चिन्तनमें मत बिताओ। पूरे मनसे, सम्पूर्ण बुद्धिसे भगवान्में जुड़ जाओ। इन्द्रियाँ अनवरत केवल भगवान्का ही स्पर्श प्राप्त करें, मन केवल उन्हींका मनन करे, बुद्धि उन्हींमें परिनिष्ठित रहे, आत्मा सदा 'स्वस्थ' रहे। भगवान्के सिवा अन्य कुछ रह ही न जाय। ऐसा कर सकें तो हमारा जीवन सार्थक है। मानव-जीवनका वास्तविक उद्देश्य सिद्ध हो गया। यह न हुआ तो जीवन व्यर्थ ही नहीं गया, अनर्थमय बीता—अनर्थ बटोरनेमें गया! और इसका परिणाम जो होगा, वह बहुत ही भयानक होगा। उस समय सिवा पश्चात्तापके कुछ भी उपाय नहीं रह जायगा।

याद रखो—जबतक श्वास चल रहे हैं, शरीर स्वस्थ है—तभीतक सुगमतासे यह साधन कर सकते हो। अतः लग जाओ पूर्णरूपसे और सफल कर लो अपना मानव-जीवन!

शुभ-चिन्तनका अभ्यास बनावें

याद रखो—मनुष्यके द्वारा होनेवाले शुभ-अशुभ कर्मोंमें प्रधान कारण उसके मनके विचार हैं। मनुष्य जिस प्रकारका चिन्तन करता है, जैसे संकल्प करता है, वह वैसा ही बनता है। अतएव सदा-सर्वदा अशुभ-चिन्तनको हटाकर शुभ-चिन्तनका अभ्यास करना चाहिये। भोग-कामना, क्रोध, लोभ, अभिमान, हिंसा, द्वेष, निर्दयता, पर-दोषदर्शन, डाह आदि सब अशुभ-चिन्तन हैं। प्रातःकाल उठते ही भगवान्‌को नमस्कार करके भगवत्कृपाका आश्रय लेकर दिनभरके लिये शुद्ध संकल्प करना चाहिये। मनमें दृढ़ताके साथ निश्चय करना चाहिये कि आज दिनभर प्रभुकृपासे मैं भगवत्सेवाकी कामना, क्षमा, त्याग, नम्रता, अहिंसा, प्रेम, दया, पर-गुणदर्शन, परायी उन्नतिमें प्रसन्नता आदिके साथ-साथ प्रभुके नाम-गुणका चिन्तन ही करूँगा; अशुभ तथा अशुद्ध विचारोंको कभी मनमें क्रियामें आने ही नहीं दूँगा।

याद रखो—पुराना बुरा अभ्यास होनेके कारण शुद्ध संकल्प करनेपर भी अशुभ तथा अशुद्ध विचार मनमें आयेंगे, पर सावधानीके साथ उनके आते ही उन्हें निकालकर उनकी जगह शुभ तथा शुद्ध विचारोंको भरते रहना चाहिये। बार-बार अशुभको हटाने तथा शुभको स्थापित करनेके अभ्याससे—अभ्यासकी मन्दता-तीव्रताके अनुपातसे अशुभ विचार नष्ट होने लगेंगे, उनका आना कम होता चला जायगा और शुभ विचार बार-बार आकर अपना स्थान बना लेंगे और बढ़ते रहेंगे। पर अशुभको हटाने तथा शुभको लानेके कार्यमें असावधानी, आलस्य, प्रमाद कभी नहीं करना चाहिये। जबतक अशुभका सर्वथा विनाश न हो जाय, तबतक अग्निकी छोटी-सी चिनगारी

भी बढ़कर सारे घरको भस्म कर देती है, इसी तरह, थोड़ा-सा अशुभ विचार भी आश्रय पा जायगा तो उसे बढ़कर हमारे जीवनके शुभको नष्ट करते देर नहीं लगेगी। अतः सावधान रहना चाहिये।

याद रखो—सावधानी ही साधना है। दिनभर प्रत्येक कार्य करते समय सावधानीके साथ देखते रहना चाहिये कि कभी किसी भी हेतुसे अशुभ विचार या संकल्प मनमें आ न जाय। शुभ विचार तथा संकल्पोंका बार-बार चिन्तन करते रहना चाहिये। अपने दोष-दुर्गुणोंपर अपनी मानस-पाप-चिन्ता-धारापर कभी दया नहीं करनी चाहिये, निरन्तर उसका समूलोच्छेद करनेके लिये सचेष्ट रहना चाहिये, अपने दोषपर कभी क्षमा न करके प्रायश्चित्तके रूपमें अपनेको कुछ दण्ड देना चाहिये, जिससे दोष-चिन्तन तथा दोष-सेवनमें बराबर रुकावट हो।

याद रखो—मनुष्यके जीवनका असली धन उसका सदाचार, उसके जीवनके सद्‌गुण, उसकी दैवी सम्पत्ति ही है। जो इस धन-सम्पत्तिको सुरक्षित रखने तथा बढ़ानेमें नित्य सावधान तथा तत्पर नहीं है, वह सबसे बड़ा मूर्ख है; क्योंकि वह अपनी बड़ी-से-बड़ी हानि कर रहा है। इसलिये इस शुभ धन-सम्पत्तिको नित्य बढ़ाते रहना चाहिये और जैसे व्यापारी अपना तलपट देखता है, वैसे ही प्रतिदिन रात्रिको सोनेसे पहले दिनभरका हिसाब-किताब देखना चाहिये। अशुभ-चिन्तन कितना कम हुआ, शुभ-चिन्तन कितना अधिक हुआ—यह देखना चाहिये। जैसे धनका लोभी संतोष न करके उत्तरोत्तर धनकी वृद्धि चाहता है, वैसे ही दैवी सम्पदा उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहे, ऐसी तीव्र आकांक्षा करके दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि प्रभुकृपासे कल आजसे कहीं अधिक दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी, शुभ तथा शुद्ध चिन्तन बढ़ेगा।

याद रखो—शुभ तथा शुद्ध चिन्तन बढ़ रहा है या नहीं, इसका पता लगता है हमारी क्रियाओंसे। हमारे कर्मोंमें, हमारे व्यवहारमें, आचरणमें उत्तरोत्तर सात्त्विकता आ रही है या नहीं, इसे देखते रहना चाहिये। यदि प्रभुकृपासे हमारे व्यवहार-आचरण—हमारे कर्म शुभ हो रहे हैं तो मानना चाहिये कि हमारा जीवन सच्चे सुखकी ओर—परमानन्दस्वरूप परमात्माकी ओर बढ़ रहा है। यही मानव-जीवनका लक्ष्य है।

भगवत्प्राप्ति अथवा ज्ञानकी कसौटी

याद रखो—भगवत्प्राप्ति या ज्ञान निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग या ज्ञानयोग—किसी भी साधनके द्वारा हुआ हो, भगवत्प्राप्त या ज्ञानी पुरुषका चित्त हर अवस्थामें समतापन्न और अव्याहत शान्त रहता है। सांसारिक दुःखोंमें उसका मन उद्वेगरहित रहता है और उसे सुखकी कभी स्पृहा ही नहीं होती। राग, भय, क्रोध आदि उसमें रहते ही नहीं।

याद रखो—'वह सांसारिक प्रिय कहलानेवाली वस्तुकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता और अप्रियकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होता; वह स्थिरबुद्धि, संदेहरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष नित्य ब्रह्ममें एकात्म-स्थित रहता है'।

याद रखो—वह भगवत्प्राप्त भगवत्प्रिय भक्त न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है और न कामना करता है। उसके द्वारा सारे शुभाशुभका भलीभाँति त्याग हो जाता है।

याद रखो—ऐसा पुरुष भगवत्प्राप्ति या ज्ञानरूप लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक अन्य कुछ भी लाभ मानता ही नहीं। इस भगवत्प्राप्त-स्थितिमें वह बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

याद रखो—भगवद्गीताके उपर्युक्त वचनोंके अनुसार भगवत्प्राप्त पुरुष समस्त सांसारिक द्वन्द्वोंसे अतीत हो जाता है। उसमें आलस्य, जडता, संकीर्णता, ईर्ष्या, मोह, काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, मद, हिंसा आदि दोष तो रहते ही नहीं, दैवी सम्पदाके सद्गुणोंका स्वाभाविक विकास हो जाता है और वे सहज ही बढ़ते रहते हैं; पर वह अपनेको इन गुणोंके कारण गुणी नहीं मानता। उसके मनमें गुणाभिमान नहीं होता। वह सद्गुणोंको लेकर अपनेको बड़ा नहीं मानता। जैसे सूर्यमें सहज ही प्रकाश रहता है, वैसे ही उसमें सहज ही दैवी सम्पदाके सद्गुणोंका विकास रहता है।

याद रखो—आध्यात्मिक साधनाके साथ चरित्रका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई अपनेको आध्यात्मिक साधनमें उन्नत मानता हो और उसके चरित्रमें पवित्रता तथा दैवी सम्पदाके गुणोंका विकास न हो, यह सर्वथा असम्भव है। अन्तरमें यदि सत्य परमात्माकी अनुभूति है तो उसका बाहर भी प्रकाश होगा ही। सूर्यके साथ जैसे रात्रि नहीं रह सकती, वैसे ही भगवत्-प्रकाशके साथ पापमूलक विषयान्धकार नहीं रह सकता। यह कसौटी है—इस बातको जानने-परखनेकी कि हमारी आध्यात्मिक उन्नति हो रही है या नहीं; यदि हो रही है तो दैवी सम्पदाके गुणोंका प्रकाश तथा परिवर्द्धन होगा ही।

याद रखो—कोई अपनेको भगवत्प्राप्त या ज्ञानी बताये और दूसरे लोग भी उसे भगवत्प्राप्त या ज्ञानी मानते हों, पर जबतक उसे यथार्थ सत्-परमात्माकी उपलब्धि नहीं होती, तबतक बड़ी-बड़ी बातोंके कहने-सुननेसे कुछ नहीं होता। मुझे महान् ब्रह्म-पदार्थ मिल गया, यह कहनेसे काम नहीं चलता; उस पदार्थकी प्राप्तिके साथ-साथ सारे अभावोंका नाश हो जाना चाहिये।

उसकी प्राप्तिके बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहना चाहिये।

याद रखो—इस भगवत्प्राप्ति या ज्ञानकी कसौटी है—अहंता, ममता, राग, कामना, वासना तथा इनके कारण उदय होनेवाले समस्त दुर्विचारों और दुर्गुणोंका नाश, चित्तमें अखण्ड अनन्त शान्ति एवं एकमात्र परमानन्दसागरमें एकात्मता।

याद रखो—इसीके लिये योगके यम-नियम, भक्तिके दास्यादि रस, ज्ञानके साधन-चतुष्टय, मनुकथित दस मानवधर्म आदि साधन बतलाये गये हैं। भगवत्प्राप्तिका एकमात्र लक्ष्य रखकर निष्कामभावसे यथारुचि सावधानी तथा लगनके साथ इन साधनोंका सेवन करना चाहिये।

भगवान्‌को एकमात्र लक्ष्य बनाकर उनके सम्मुख हो जाइये

याद रखो—नित्य तथा पूर्ण सुख एकमात्र भगवान् या ब्रह्ममें ही है। इसीलिये जबतक भगवद्दर्शन या ब्रह्मसे संस्पर्श नहीं हो जाता, तबतक नित्य पूर्ण सुख मिल ही नहीं सकता। सुख सभी चाहते हैं और सभी नित्य तथा पूर्ण सुख चाहते हैं; परंतु भूल यह होती है कि वह सुख खोजा जाता है—जागतिक विषयों, परिस्थितियों और वस्तुओंमें। जगत्‌में ऐसा कोई भी विषय, परिस्थिति और वस्तु नहीं है, जो नित्य हो तथा पूर्ण हो।

याद रखो—विषय, परिस्थिति और वस्तुमें जो सुख देखा या पाया जाता है, वह वास्तवमें सुख है ही नहीं। सुख वह है, जो नित्य हो, पूर्ण हो। इसीलिये भारतके ऋषि-मुनियोंने सुदीर्घ

समाधि तथा ध्यानलब्ध दृष्टिसे सुखका अनुसंधान किया और उसे पाया एकमात्र नित्य सत्य सनातन पूर्ण भगवान्‌में या ब्रह्ममें। इसीसे उन्होंने एकमात्र भगवत्प्राप्ति या ब्रह्म-संस्पर्शको ही सुख माना और उसीकी प्राप्तिके लिये साधनोंकी शिक्षा दी और इसीलिये भारतीय मानव-समाजने अपना लक्ष्य भोग न मानकर भगवान्‌को माना।

याद रखो—मिथ्या भ्रमवश मनुष्यकी भोगोंमें—परिस्थिति और पदार्थोंमें सुखकी आस्था हो रही है और उन्हींकी प्राप्ति, रक्षा तथा उत्तरोत्तर वृद्धिमें वह अपना जीवन खो रहा है। कभी-कभी जो आंशिक तथा क्षणस्थायी सुख-सा दीखता है, उसीको वह बढ़ाना चाहता है, पर वह बढ़ता तो है ही नहीं, उसका दीखना भी बंद हो जाता है। तथापि मनुष्य भोगोंसे सुखकी आशा नहीं छोड़ता और नित्य नये प्रयास करनेमें नित्य नयी अशान्ति, क्षोभ, दुःख तथा पापकी उपलब्धि करता रहता है। यही उसका महामोह है।

याद रखो—एकमात्र भगवान् ही यथार्थ एवं नित्य सत्य सुखस्वरूप हैं—यह मानकर, इसपर विश्वास कर जीवनको भोगोंसे हटाकर भगवान्‌की ओर मोड़ो। एकमात्र भगवान्‌के ही शरणापन्न होकर भगवान्‌में ही सुख देखो, उन्हींसे माँगो और उन्हींको माँगो। भगवान् देंगे, अवश्य देंगे। उनसे ही और उनमें ही हमें शाश्वत सुख मिलेगा।

याद रखो—भगवान्‌में विश्वास होनेपर दुःख नामकी वस्तुका ही अभाव हो जायगा। फिर तो प्रत्येक परिस्थितिमें उनके दर्शन तथा उनका संस्पर्श प्राप्त होता रहेगा। इससे वह अनन्त सुख मिलेगा, जो कभी मिटेगा नहीं, घटेगा नहीं, उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहेगा।

याद रखो—मोहग्रस्त मनुष्य ही भगवान्‌को छोड़कर भोगोंमें रचा-पचा रहता है, अपने सारे बुद्धि-बल, शरीर-बल तथा मन-इन्द्रियोंको निरन्तर भोगोंकी प्राप्ति और उनके सेवनमें ही लगाये रखता है। इसीसे वह मानव-जीवनके एकमात्र परम लाभ भगवत्प्राप्तिसे वंचित रहता है। इसीलिये वह जीवनभर नयी-नयी अनन्त चिन्ताओं, उद्वेगों तथा दुःखोंसे ग्रस्त, दिन-रात भयत्रस्त और दिन-रात शोक-विषादका अनुभव करता हुआ भोगप्राप्ति, भोगरक्षण तथा भोगवृद्धिके लिये नरकके द्वारस्वरूप काम-क्रोध-लोभका आश्रय लेकर नये-नये पापकर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। इस प्रकार दुर्लभ मानव-जीवनको व्यर्थ तथा अनर्थमय कार्योंमें लगाकर वह उसे केवल नष्ट ही नहीं करता, बहुत बड़े-बड़े भावी संकटोंका निर्माण कर लेता है।

याद रखो—जीवनके मूल्यवान् क्षण बीते जा रहे हैं। अतएव शीघ्र विचार करो और भगवान्‌को ही जीवनका एकमात्र परम लक्ष्य बनाकर उनके सम्मुख हो जाओ। भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर सभी प्राप्त सामग्रियों तथा परिस्थितियोंको केवल भगवान्‌की प्राप्तिके साधन बना दो तथा सावधानी और शीघ्रताके साथ उनकी ओर अग्रसर होते चले जाओ।

याद रखो—भगवान्‌की ओर अग्रसर होनेका अभिप्राय है—मनका उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक भगवान्‌के स्मरणमें लगना। फिर भगवान्‌को कहींसे आना नहीं पड़ता, वे सदा सर्वत्र वर्तमान हैं, जब किसीको अपने लिये अनन्य साधनपरायण तथा परम आतुर देखते हैं, तभी उसे अपना दर्शन तथा मंगलमय संस्पर्श प्रदान कर कृतार्थ कर देते हैं।

भगवान्‌पर निर्भरशील बनिये

याद रखो—जबतक मनुष्य भगवान्‌पर, उनकी अहैतुकी कृपापर निर्भर न होकर अपने तुच्छ अभिमानपर निर्भर करता है, अपने पुरुषार्थके भरोसे सिद्धि प्राप्त करना चाहता है, तबतक पद-पदपर उसे अभिमानके द्वारा असफल होना पड़ता है, निराशा, विषाद-शोकका अनुभव करना पड़ता है। सफल वही होता है, जो भगवान्‌पर, भगवत्कृपापर निर्भर करता है। भगवत्कृपा उसे समस्त बड़े-बड़े विघ्नोंसे पार लगा देती है, भगवत्कृपा उसे परम सिद्धि प्राप्त करा देती है।

याद रखो—भगवान्‌पर निर्भर होनेका अर्थ हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना नहीं है—'भगवान् अपने-आप ही सब कर देंगे, मुझे कुछ नहीं करना है'—उद्यमरहित होकर पड़े रहना नहीं है।

याद रखो—भगवान्‌पर निर्भर करनेवाला पुरुष अहंकार-शून्य होता है, सिद्धि-असिद्धिकी चिन्ता नहीं करता, फलानुसंधान-परायण नहीं होता। वह निर्विकार रहता हुआ ही धृति तथा उत्साहके साथ भगवत्सेवाके भावसे निरन्तर भगवान्‌के अनुकूल कार्य करता रहता है। वह अपने कर्तव्य-पालनमें तनिक भी त्रुटि नहीं करता, पूरा तन-मन लगाकर भगवत्प्रीत्यर्थ सत्कर्म-परायण रहता है; अपनेको भगवान्‌का यन्त्र समझता है और इससे उसमें सात्त्विकताकी वृद्धि होनेके कारण कर्म करनेकी शक्ति भी बढ़ जाती है, क्योंकि उसे फलकी प्रतिकूलता-अनुकूलताका कोई ध्यान नहीं रहता, इससे न तो उसमें निराशा आती है और न भोग-प्राप्तिजनित मिथ्या हर्षोन्मत्तता।

याद रखो—निर्भरशील साधक तमोगुणसे अभिभूत न होनेके कारण कभी अकर्मण्य नहीं होता। वह अपने भगवान्‌से अन्य

कुछ भी नहीं चाहता, केवल यही चाहता है कि उसकी विश्वासपूर्ण निर्भरतामें तनिक भी कमी न हो, निर्भरा भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहे। उसके लिये उसके भगवान्‌को कभी कुछ भी चिन्ता न करनी पड़े। बस, यन्त्रकी तरह यन्त्रीके अनुकूल आचरण नित्य-निरन्तर सहज उत्साह-उल्लासपूर्ण हृदयसे होता रहे। कभी इस अभिमानकी भी कल्पना न जगे कि 'मैं भगवत्प्रीत्यर्थ कार्य करता हूँ, भगवान्‌पर निर्भर हूँ।' वस्तुत: निर्भरशील पुरुषसे अभिमानपूर्वक कोई कार्य होता ही नहीं। उसकी निर्भरता सहज होती है और उसका प्रत्येक कार्य सहज स्वाभाविक होता है—कठपुतलीकी भाँति।

याद रखो—निर्भरशील पुरुषको कभी असंतोष नहीं होता। असंतोष होता है अभावकी अनुभूतिमें, अभावपूर्तिकी कामनामें; निर्भरशील पुरुष किसी अभावका अनुभव करता ही नहीं, अत: उसे अभावपूर्तिकी कामना भी नहीं होती। उसे नित्य भाव-स्वरूप भगवान्‌की स्मृति बनी रहती है और उसके द्वारा भगवत्सेवाके कार्य होते रहते हैं।

याद रखो—मनुष्य जब भगवान्‌का हो जाता है, उनके हाथोंमें विश्वासपूर्वक बिना शर्तके अपनेको सौंप देता है, बस, अपने-आप ही उसमें निर्भरता आ जाती है। न उसे अपने पुरुषार्थका ज्ञान होता है, न तन-मनके आरामका। उसकी कोई भी शर्त नहीं होती। वह निश्चिन्त होकर भगवत्कैंकर्यमें प्रवृत्त हो जाता है। उसका प्रत्येक कार्य ही भगवत्सेवाके लिये होता है, भगवत्सेवा-स्वरूप ही होता है। उसके मनमें न तो अपने लिये कुछ पानेकी आवश्यकता रहती है, न कभी कुछ पानेकी कामना ही होती है।

याद रखो—यों तो अनन्त-अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डका सारा

कार्य भागवती शक्तिसे ही सम्पन्न होता, पर निर्भर भक्तके तो छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सारे कार्योंका भार भगवान् स्वयं वहन करते हैं। उसको कब क्या चाहिये, इसकी जानकारी भी भगवान् रखते हैं और पूर्ति भी भगवान् ही करते हैं। योगक्षेमकी सारी जिम्मेवारी वे ले लेते हैं तथा वास्तवमें असली 'योग' और असली 'क्षेम' का स्वरूप भगवान् ही जानते हैं। वे ही योग-क्षेमका स्वरूप निश्चय करते हैं और वे ही उसे पूर्ण करते हैं। कैसा सौभाग्य है उस निर्भरशील पुरुषका!

संत बनो, कहलाओ मत

याद रखो—जैसे सूर्यमें प्रकाश तथा तेज सहज स्वाभाविक है, जैसे जलमें द्रवता और शीतलता स्वाभाविक है, जैसे चन्द्रमामें चाँदनी और सुधारसमयता स्वाभाविक है, वैसे ही संत, भक्त और भगवत्परायण सात्त्विक पुरुषोंमें दैवी सम्पत्तिके गुण सहज स्वाभाविक होते हैं। उनमें उन गुणोंको लेकर अभिमान नहीं होता। 'मैं सत्यवादी हूँ'—सहज सत्यभाषी संत ऐसा नहीं मानता; 'मुझमें क्रोध नहीं है', 'मैं सहिष्णु तथा क्षमाशील हूँ'—अक्रोधी क्षमावान् पुरुष ऐसा नहीं मानता। ये सद्‌गुण उनके जीवनके स्वरूप बन जाते हैं।

याद रखो—जिनमें अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता, उदारता, परदु:खकातरता, दया, अस्तेय, अपरिग्रह, त्याग, वैराग्य, ईश्वरमें दृढ़ विश्वास, आत्मज्ञान, अभय, निश्चिन्तता, आनन्दमयता आदि गुण हैं तथा बढ़ रहे हैं, वे ही वास्तवमें संत, महात्मा या भक्त हैं। जो संत कहलाते हैं, अपनेको संत बतलाते हैं, दूसरोंको दैवी गुणोंका उपदेश करते हैं, परमार्थ तथा संयमकी

शिक्षा देते हैं, अपनेमें दैवी गुणोंके होनेकी घोषणा करते हैं, पर वास्तवमें जिनमें ये गुण नहीं हैं, वे न संत हैं, न भक्त हैं और न महात्मा ही।

याद रखो—जिनके पास वास्तवमें धन-सम्पत्ति है, वे यदि धनी नहीं भी कहलाते या दरिद्र ही माने जाते हैं, तो भी वे धनी ही हैं; क्योंकि उनके पास धन है। पर जो धनी, सम्पन्न कहलाते हैं, जिनके लिये लोगोंमें ऐसी धारणा भी है कि ये धनी हैं और जो व्यवहार भी धनीका-सा करते हैं, लेकिन जिनके पास धन नहीं है, वे वास्तवमें निर्धन ही हैं। इसी प्रकार जिनके जीवनमें संतके स्वाभाविक दैवी गुण वर्तमान हैं, उन्हें चाहे कोई संत कहे या माने अथवा न कहे न माने, वरं कोई चाहे उन्हें असंत भी कहते—मानते हों, तो भी वे किसीके कहे या माने जानेके अनुसार असंत नहीं हो सकते।

याद रखो—इसीलिये संत या भक्त कहलानेकी या संत या भक्तके नामसे परिचित होनेकी चेष्टा मत करो। संतके गुण या भक्तिको, जो भगवदीय दैवी गुणोंका ही दूसरा नाम है—निरन्तर अपने जीवनमें लानेकी चेष्टा करो। दूसरे क्या कहते हैं, क्या मानते हैं, इसकी ओर मत देखो। केवल अपनी ओर देखो और सावधानीके साथ देखो—दैवी सम्पत्तिके गुण उत्तरोत्तर बढ़कर सहज जीवनरूप बन रहे हैं या नहीं। यदि दैवी सम्पत्तिके गुण बढ़ रहे और सहज जीवनरूप बन रहे हैं तो उन्हें छिपाते हुए और भी बढ़ाते रहो। अपने सद्गुणोंका ढिंढोरा पीटना तो उनका तिरस्कार करके लौकिक सम्मानकी भूखको, जो गिरानेवाली है, बढ़ाना है। यह तो करो ही मत। तुम्हारे अंदर कोई ये गुण बतावे और सम्मान दे तो उसे स्वीकार न करो। दैवी सम्पत्तिके गुणोंके मूल्यके रूपमें यदि सम्मान स्वीकार न कर लिया और सम्मानकी

लालसा कहीं बढ़ चली तो दैवी सम्पत्तिके गुण घटने लगेंगे, लुप्त होने लगेंगे और उनके स्थानपर दम्भ आकर लोकरंजनमें जीवनको लगा देगा। जीवनमें पतनकी अशुभ घड़ी आ जायगी। अतएव सावधान रहो।

याद रखो—मान, बड़ाई, सत्कार, पूजा, विषय-भोगोंकी सुविधा तथा कामना आदि सब विघ्न हैं—राहके लुटेरे हैं और दैवी सम्पत्तिका हरण करनेके लिये ही आया करते हैं। इनसे सदा बचते रहो। बड़ी सावधानीसे इन्हें हटाते रहो। जरा-सा भी इनको आश्रय दिया कि फिर तो ये अपना प्रभुत्व जमाकर सारा अध्यात्म-धन छीन लेंगे। अतएव संत बनो, कहलाओ मत; भक्त बनो, कहलाओ मत—इसीमें कल्याण है।

अपने आत्मस्वरूपको सदा स्मरण रखें

याद रखो—जैसे एक ही शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंके भिन्न-भिन्न नाम और काम होनेपर भी एक ही चेतन आत्मा उन सबमें सब समय सर्वथा व्याप्त है, सब उसीसे अनुप्राणित, जीवित और क्रियाशील हैं, सबके नाम-रूप-क्रिया भिन्न होनेपर भी सब अंग-अवयव परस्पर एक-दूसरेकी सहज सेवा-सहायतामें तथा उनके सुख-हित-सम्पादनमें संलग्न हैं, वैसे ही एक ही विराट् आत्मा—ब्रह्म या परमात्मा इन विभिन्न नाम-रूप तथा क्रियावाले असंख्य ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त है और शरीरके अंगोंकी भाँति ही विभिन्न ब्रह्माण्डोंके मानव-मात्रका, जिसको भगवान्ने विवेक-ज्ञान दे रखा है—यह कर्तव्य है कि वह भिन्न-भिन्न कर्म करता हुआ भी सर्वात्मभावसे सबके सुख-हित-सम्पादनमें, सबकी सहज सेवा-सहायतामें लगा रहे। यही तत्त्वज्ञानका साधन है और भारतके ऋषियोंकी यही अनुभूति है।

याद रखो—अज्ञानवश जीवमें 'अहं' ('मैं' पन)-की उत्पत्ति होती है। वास्तवमें यह 'अहं' उसे मिला है—संसारके व्यवहार-निर्वाहके लिये, वैसे ही जैसे नाटकके प्रत्येक पात्रको 'अहं' (उसका नाम, रूप तथा काम) नाटककी सफलताके लिये उसे दिया जाता है; परंतु वह उस 'अहं' को सत्य मानकर उसमें ममता-आसक्ति तथा उससे परके प्रति उपेक्षा, द्वेष आदि कर बैठता है और उसी क्षुद्र 'अहं' के कल्पित मंगलके लिये विविध कामनाओंके वश होकर विवेकभ्रष्ट हो जाता है एवं अपने मंगलके नामपर नित्य अभाव, नित्य अशान्ति, नित्य दुःखका अनुभव करता हुआ नित्य नये-नये पापोंका आचरण करके अपना भविष्य बिगाड़ता रहता है। यह 'अहं' जितना-जितना छोटे दायरेमें आता है, उतना-उतना ही अधिक दूषित होता है—जैसे छोटे-से गड्ढेमें इकट्ठा हुआ शुद्ध जल दूषित हो जाता है।

याद रखो—भारतका अनुभूत सत्य—तत्त्वज्ञान बतलाता है कि केवल मनुष्य ही नहीं, जड-चेतन जीवमात्रके रूपमें एक परमात्मा ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। इस तत्त्व-ज्ञानको सदा सामने रखकर ही व्यवहार करना चाहिये; पर सीमित गंदा 'अहं' ऐसा करने नहीं देता। जब हिंदुस्तान तथा पाकिस्तान एक देश था, तब हिंदू-मुसलमान-पारसी—सभी देशकी स्वतन्त्रताके लिये एक सूत्रमें बँधकर स्वतन्त्रताकी साधना करते थे; अलग-अलग धर्म होते हुए भी सभी 'भारतीय' थे। पाकिस्तान बना कि दो परस्परविरोधी राष्ट्र बन गये। सिख और हिंदूमें तो दोकी कभी कल्पना ही नहीं थी। क्षुद्र 'अहं' ने आज उन्हें दो बनाकर आपसमें वैमनस्य उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। सारा भारत एक देश था, आज क्षुद्र 'अहं' के कारण भाषा तथा भूमिकी सीमाके नामपर सब प्रान्त एक-दूसरेको पृथक् मानकर अपने

सीमित स्वार्थके लिये आपसमें लड़ने लगे। पंजाब-हरियाणा दोनों ही पंजाब थे, कोई लड़ाई नहीं। अब क्षुद्र 'अहं' के कारण हुई दुर्दशा देखिये—परस्पर रक्तपात, अनशन, शरीरदाह, आगजनी, विध्वंस हो रहा है। यह सारी हानि अपनी ही हो रही है, पर क्षुद्र 'अहं' इस तरफ दृष्टि ही नहीं जाने देता।*

याद रखो—कुछ समय पहले भारतमें बहुत थोड़े राजनीतिक दल थे; जो थे, उनमें कम-से-कम अपने दलमें तो मतैक्य तथा प्रेम था; पर आज कांग्रेसी, समाजवादी, कम्युनिस्ट तथा अन्यान्य दलोंमें प्रत्येक दलमें परस्परविरोधी अनेक भेद हो गये हैं और देखिये क्षुद्र 'अहं' का चमत्कार कि वे एक उद्देश्यवाले होकर भी परस्परमें बुरी तरहसे नीचे स्तरका वाग्युद्ध और शारीरिक युद्ध करते हैं एवं एक-दूसरेको गिरानेमें लगे हुए हैं; बात-बातपर दल और मत बदलनेमें भी नहीं सकुचाते। धर्म, देश और जातिके लिये सर्वत्यागकी शिक्षा प्राप्त किये हुए, अपने व्यक्तिगत जीवनसे लोगोंको त्याग, सदाचार तथा शिष्टाचारकी शिक्षा देनेवाले लोकनायकोंकी जब क्षुद्र 'अहं' के कारण इस प्रकार दुर्गति हो रही है, तब उनको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करनेवाले जनसमूहकी क्या गति होगी? यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है।

याद रखो—इस समय क्षुद्र सीमित 'अहं' का तूफान आया हुआ है। प्रायः सभी उसमें फँसे हैं। अतएव सबका सुधार तो अभी कठिन है। अभी तो मानव-जगत् पतनकी ही ओर जा रहा है। इस स्थितिमें जो लोग मानव-जीवनके असली उद्देश्यको समझकर अपना जीवन सफल करना चाहते हैं, उनका व्यक्तिगत

* ये पंक्तियाँ मार्च १९७० में तत्कालीन परिस्थितियोंको दृष्टिमें रखते हुए लिखी गयी थीं।

रूपसे यह कर्तव्य है कि वे सबसे पहले अपनेको 'आत्मा' समझें और सबको अपने उसी आत्माका अभिन्न-स्वरूप मानें। यह स्मरण रहे कि हम पहले एक आत्मा हैं, पीछे अमुक देशवासी हैं, अमुक धर्मसम्प्रदायके हैं, अमुक जातिके हैं, अमुक प्रान्तके हैं, अमुक भाषा-भाषी हैं, अमुक परिवारके हैं और अमुक व्यक्ति हैं। जिस किसी विचार या क्रियासे अपने आत्मस्वरूपपर आघात पहुँचता हो, उससे सावधानीके साथ बचे रहें। यही परम कर्तव्य है।

सम्पूर्ण आचरण भगवत्प्रीत्यर्थ हों

याद रखो—मनुष्य-जन्मका एकमात्र उद्‌देश्य है—उस परमार्थ गतिपर पहुँच जाना, जिसे भगवत्प्राप्ति, भगवत्प्रेम-प्राप्ति, मोक्षलाभ, मुक्ति, आत्मसाक्षात्कार आदि भिन्न-भिन्न अनेक नामोंसे निर्दिष्ट किया जाता है। इसीलिये जीवको भगवत्कृपा तथा उसके पुण्यबलसे मनुष्य-शरीर मिलता है। मनुष्य कर्मयोनि है, इसमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता है। कौन-से कर्म कर्तव्य हैं और कौन-से त्याज्य हैं, यह बतलानेके लिये विधि-निषेधात्मक शास्त्र मनुष्यको दिये गये हैं।

याद रखो—कर्मके प्रधानतया तीन परिणाम होते हैं—(१) नरक, नारकी योनि, आसुरी शरीर आदिकी प्राप्ति—मनुष्य-शरीर मिलनेपर भी कर्मानुसार न्यूनाधिक रूपसे अंगहीनता, विकलांगता, दासत्व आदिकी प्राप्ति तथा रोग, दरिद्रता, अभाव, अपमान, भय, विषाद, भाँति-भाँतिके कष्ट और विपत्तियोंसे घिरे रहना; (२) स्वर्गादि लोक, दिव्ययोनि, उत्तम शरीर आदिकी प्राप्ति और मानव-शरीरमें कर्मानुसार न्यूनाधिकरूपसे सर्वांग-

पूर्णताकी उपलब्धि तथा स्वस्थता, समृद्धि, धनैश्वर्य, अधिकार, सम्मान, निर्भयता, प्रसन्नता, भाँति-भाँतिके भोग-सुख-सम्पत्तियोंका मिलते रहना, (३) जीवन्मुक्ति, भगवत्प्राप्ति, भगवद्धामकी प्राप्ति, मोक्ष-मुक्ति, निर्वाण आदि विभिन्न नामोंसे निर्दिष्ट परम गति-लाभ।

याद रखो—जिन कर्मोंके परिणाम नरक-नारकी योनि आदि हैं, वे ही निषिद्ध या पापकर्म हैं। अज्ञान, ईश्वर तथा परलोकमें अविश्वास, धर्ममें अनास्था, मिथ्या ममता-आसक्ति-कामना, द्रोह-दम्भ-द्वेष, इन्द्रियोंके दासत्व, भोगोंमें सौभाग्य-सुखकी आस्था, धर्म, राष्ट्र, सम्प्रदाय, प्रान्त, जाति, वर्ण, भाषा, भूमिकी सीमा, दल, दलान्तर्गत दल आदिके मिथ्याभिमानवश सीमित नीच स्वार्थके कारण मनुष्य भविष्यके परिणामको भूलकर पापकर्ममें प्रवृत्त होता है और बार-बार प्रवृत्त होनेपर उसीमें गौरव-बोध करने लगता है। वह क्रमशः पूरा नास्तिक होकर विवेकहीन पशु तथा घोर विषयासक्त असुर-राक्षस-पिशाचसे बढ़कर नीच स्वभाववाला बन जाता है और मानवयोनिमें प्राप्त कर्माधिकार, साधन-सामग्री आदिका पूर्ण दुरुपयोग कर अपने भविष्यको दीर्घकालके लिये नष्ट-भ्रष्ट और दुःख-दावानलसे जलनेवाला बना लेता है। उसकी मिथ्या मान्यता या उसी विचारके बहुसंख्यक लोगोंके बहुमतसे निश्चित की हुई मिथ्या मान्यतासे सत्य सिद्धान्तपर—कर्मानुसार परलोक-पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरकादि लोकों, योनियों एवं परिस्थितियोंकी प्राप्तिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कर्मानुसार बाध्य होकर उसे कर्मफलरूपमें उन सबका भोग करना ही पड़ता है। वह किसी प्रकार भी उनसे छूट नहीं सकता।

याद रखो—जैसे पाप—निषिद्ध अपवित्र कर्मका परिणाम

नरकादि-फल-भोग होता है, वैसे ही पुण्य—वैध पवित्र कर्मोंका परिणाम स्वर्गादि-सुखभोग होता है और यही पुण्यकर्म यदि ममता, कामना, आसक्तिका त्याग करके लोकहितकी दृष्टिसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ, भगवान्‌की पूजाके लिये किये जायँ तो मानव-जीवनके परम और चरम उद्‌देश्यकी सिद्धिरूप भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये पाप-कर्मका तो सर्वथा ही त्याग करें, पुण्यकर्म भी सकामभावसे न करें; क्योंकि वे भी बन्धनकारक ही हैं; निष्कामभावसे भगवत्सेवा या भगवत्प्रीतिके लिये पुण्य-पवित्र कर्मोंका आचरण करें।

याद रखो—मानव-जीवन बहुत दुर्लभ है और है क्षणभंगुर; पता नहीं, कब समाप्त हो जाय। इसलिये जरा भी समय व्यर्थ न खोकर इसी कामको सबसे पहला तथा सबसे प्रधान समझकर पूर्णरूपसे इसीमें लग जायँ। मन-बुद्धि-शरीरसे जितनी भी आभ्यन्तरिक और बाह्य क्रियाएँ हों—सब केवल और केवल भगवत्प्रीत्यर्थ हों; मनकी सारी ममता, सारी आसक्ति केवल श्रीभगवान्‌में हो और उन्हींके चरणकमलोंकी निरन्तर सन्निधि और स्मृति रहे—यही एकमात्र कामना हो।

भगवत्प्राप्तिका साधक ही यथार्थ मानव है

याद रखो—मानव वास्तवमें वही है, जिसने मानव-जीवनके वास्तविक एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्ति या आत्म-साक्षात्कारकी ओर चलना शुरू कर दिया है और जो जागतिक राग-द्वेषसे बचकर सावधानीके साथ सीधा आगे बढ़ रहा है। जो मानव ऐसा नहीं है, भोगासक्त है, इन्द्रियोंके विषयोंकी तथा जागतिक पद-अधिकार, धन-ऐश्वर्य, मान-सम्मान आदिकी प्राप्तिको ही

जीवनका उद्देश्य मानता है और इन्हींकी प्राप्तिके साधनमें लगा हुआ दिन-रात अशान्ति, चित्त-विभ्रान्तिका अनुभव करता रहता है, वह वास्तवमें मानव नहीं है; मानव-रूपमें विचरण करनेवाला पशु आदि प्राणी है। जो दिन-रात भोगोंकी प्राप्ति, संरक्षण-संवर्धनके लिये घोर आसुर तथा राक्षस-भावको ग्रहण करके वैर-हिंसा, चोरी-डकैती, असत्यभाषण-व्यवहार, अभिमान-अहंकार, दूसरोंके अपमान-अपवाद तथा स्वत्वापहरणमें लगा हुआ राक्षसी लूट-पाट, मार-काट, विध्वंस-विनाश आदिमें प्रवृत्त है, वह मानव-शरीरमें प्राप्त सत्-साधनोंका दुरुपयोग करके मृत्युके अन्तिम क्षणतक सहस्र-सहस्र दुश्चिन्ताओंसे घिरा हुआ दुःखपूर्वक मरता है और मरनेके पश्चात् बार-बार घोर आसुरी योनियों तथा भीषण नरक-यन्त्रणाओंको प्राप्त होता है।

याद रखो—मानव-जीवनका एक-एक क्षण मूल्यवान् है और वह है—भगवत्सेवा तथा भगवत्स्मृतिके लिये। इस बातको भूलकर जो मानव उपर्युक्त पशु तथा असुर-राक्षस-पिशाच-जीवनमें आयु बिताता है, वह घोर मूर्ख है और वास्तवमें अपने ही हाथों अपने लिये भीषण नरकगर्त खोदकर उसमें गिरता है।

याद रखो—प्रत्येक श्वास जीवनको मृत्युकी ओर ले जा रहा है। निश्चित होनेपर भी पता नहीं, कब मृत्यु आ जाय। इसलिये तनिक भी विलम्ब न करके वास्तविक मानव बनकर भगवत्प्राप्तिके मार्गपर चलना शुरू कर देना चाहिये। इसीसे अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने 'सर्वकालमें भगवत्स्मरण' के लिये (**सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर**) आज्ञा दी थी। भगवत्प्राप्तिके मार्गपर चलना आरम्भ हो गया तब समझा जाय, जब जीवनमें भगवदनुकूल विचार, चिन्तन, संकल्प, कार्य, व्यवहार, आचरण

आदि होने लगें; अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अलिप्सा, प्रेम, दया, त्याग, तितिक्षा, सेवा, सौहार्द, संयम, सदाचार, भोगोंमें वैराग्य, भगवच्चरणोंमें अनुराग, जागतिक प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियोंमें ममता-आसक्तिका अभाव, सत्संगमें प्रीति तथा भगवत्स्मरणमें तीव्र प्रवृत्ति, भजनमें अनन्यता, अन्तःकरणकी निर्मलता—सौम्यता, संशुद्धि तथा भोगजगत्‌की विस्मृतिपूर्वक भगवान्‌की अखण्ड स्मृति आदि दैवी गुणोंका उदय तथा उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक संवर्धन होने लगे।

याद रखो—भगवत्प्राप्त या भगवत्प्राप्तिका साधक ही यथार्थ मानव है और उससे सहज ही प्राणिमात्रका नित्य-निरन्तर कल्याण तथा हितसाधन होता रहता है। उसका वह दिव्य अध्यात्म-जीवन अंदरसे भगवत्संयुक्त है और बाहरसे चराचर प्राणी-रूप भगवान्‌की मंगलमयी सेवासे संयुक्त। उसके द्वारा सभीको सहज ही अभय, आश्वासन तथा कल्याण प्राप्त होता रहता है।

याद रखो—मानव-जगत्‌का तो वह सर्वथा कल्याणमय दिव्य आधार ही होता है। वह प्राणिमात्रका सहज सुहृद् होता है, उसका प्रत्येक कार्य स्वाभाविक ही मानवके दुःखनाश, विपत्तिहरण, मंगलकी प्राप्ति, परमहित-साधन और परम दिव्य सुखप्राप्तिका कारण होता है। वह अन्धकारमय जगत्‌में प्रकाशपुंज होता है, डूबनेवालोंको बचानेके लिये सुदृढ़ जहाज होता है और भयसे रक्षा करनेके लिये स्वयं अभयरूप होता है। वह स्वयं परम शान्ति तथा परम दिव्य नित्य आनन्दका स्वरूप एवं उनका वितरण करनेवाला होता है।

याद रखो—ऐसे ही मानवको आदर्श मानकर जीवन-निर्माण करनेवाला मानव-जीवनमें यथार्थ प्रगति करता है, वही

विकासको प्राप्त होता है। जो ऐसा न करके भोगासक्त राजसी, तामसी, पशु-असुर-स्वभाव मनुष्योंको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करते हैं, वे लूट-पाट, मार-काट, हत्या-हिंसा, चोरी-डकैती, अनाचार-व्यभिचार, भ्रष्टाचार-असुराचार आदिमें प्रवृत्त रहकर स्वयं यहाँ दुःख भोगते हैं तथा मृत्युके बाद भीषण नरकयन्त्रणा और आसुरी योनिरूप अधोगति तथा विनाशको प्राप्त होते हैं एवं अपने दुष्कर्मोंके द्वारा जगत्के प्राणियोंमें असद्विचार, आसुरभाव, अशान्ति तथा पापका वितरण करते हुए उनके जीवनकी दुर्गतिमें कारण बननेका पाप करते हैं।

अपनी आवश्यकताओंको कम-से-कम रखो

याद रखो—छोटे-से चूल्हेमें एक-आध सेर कोयला या लकड़ीसे काम चल जाता है, उसमें अधिकके लिये स्थान ही नहीं होता। बड़े रसोईघरके चूल्हेमें इतने-से कोयले या लकड़ीसे काम नहीं चलता। वहाँ दस-बीस सेरकी जरूरत पड़ती है और बड़ी भट्ठी हो, वहाँ तो मनों ईंधन चाहिये एवं वही अग्नि यदि घरमें लग जाय तो सारा घर ही ईंधन बन जाता है या उससे भी बड़े रूपमें जंगलमें लगनेपर तो सैकड़ों-हजारों पेड़ोंसे भी उसकी भूख नहीं मिटती। इसी प्रकार संसारके भोग-विषयोंमें जिसकी हैसियत जितनी छोटी होती है, उतनी ही उसकी आवश्यकताएँ कम होती हैं और उसका अभाव कम होता है। जिसकी जितनी बड़ी हैसियत होती है, उतनी ही उसकी जरूरतें ज्यादा होती हैं और उतना ही उसका अभाव भी अधिक होता

है। जिसका अभाव जितना अधिक है, उतनी ही उसको प्रतिकूलता है और प्रतिकूलता ही दुःख है। 'जितनी बड़ी आग, उतनी बड़ी ईंधनकी भूख; और जितनी बड़ी आग, उतनी ही अधिक आँच—उतना ही अधिक ताप'—इस सूत्रको याद रखो।

याद रखो—जिसके पास सांसारिक भोगपदार्थ जितने अधिक हैं, उतनी ही उसकी कामनाएँ अधिक हैं और जितनी ही कामनाएँ अधिक हैं उतना ही दुःख अधिक है और उतना ही क्रोध, लोभ, सम्मोह, स्मृतिभ्रंश तथा बुद्धिनाशके क्रमसे सर्वनाशकी सम्भावना अधिक है।

याद रखो—जिसके जीवनमें जितनी आवश्यकताएँ अधिक होंगी, उतनी ही उनको प्राप्त करनेकी चाह अधिक होगी। जितनी चाह होगी, उतनी ही प्रवृत्ति अधिक होगी। जितनी प्रवृत्ति अधिक होगी, उतनी ही उपाधियाँ, उतनी ही परेशानियाँ, उतनी ही चिन्ताएँ, उतनी ही अशान्ति और उतने ही पापकर्म अधिक होंगे। यों जीवन अशान्तिमय, दुःखमय, चिन्तामय तथा पापमय बन जायगा। यहाँ मरते-दमतक विषाद, भय, चिन्ता, अशान्ति रहेगी तथा मृत्युके बाद नरकोंकी एवं आसुरी यन्त्रणादायक योनियोंकी प्राप्ति होगी।

याद रखो—संसारमें पेट भरने, पहनने-ओढ़ने, बैठने-सोने आदिके लिये सामग्री अवश्य चाहिये, पर यह अमुक प्रकारकी और इतनी अधिक होनी चाहिये, यह आवश्यक नहीं है। अतएव जो सभी बातोंमें सादगी रखकर अपनी स्थितिमें संतुष्ट रह कम-से-कम आवश्यकताका जीवन बिताता है, जिसे भोगोंके अभावकी पीड़ा नहीं सताती और जिसका मन भोगोंकी ओर ललचायी दृष्टिसे नहीं देखता, वह धनकी दृष्टिसे गरीब भी, मानसिक शान्तिके कारण सदा परम शान्ति तथा आनन्दका अनुभव करता

है। इसके विपरीत, एक करोड़पति या सम्राट् भी, जिसके पास प्रचुर भोग-सामग्री है, पर जो अभावके चिन्तानलसे जलता रहता है, जिसका मन सदा संतप्त, असंतुष्ट और अशान्त है, वह सदा दुःखी ही रहता है।

याद रखो—वास्तवमें सुख तो आत्मा या भगवान्‌में ही है; शेष तो सब दुःखमय ही है। कम अभाववाला भी दुःखी रहता है और अधिक अभाववाला भी। जो आत्मा या भगवान्‌को नित्य सत्य आनन्दस्वरूप मानकर उनसे जुड़ा रहता है, वह बाहरसे गरीब हो या धनी, छोटी हैसियतवाला हो या बड़ी हैसियतवाला—सदा सुखी रहता है। इस दुःखमय असार संसारमें भगवान् तथा उनका नाम ही सार है, उसीमें सबको लगना-लगाना चाहिये। इस दृष्टिसे भगवान्‌में न लगनेवाले गरीब तथा अमीर सभी दुःखी हैं। परंतु जिनकी जरूरतें कम होती हैं, उनको सांसारिक चिन्ताओंमें दिनभर ग्रस्त नहीं रहना पड़ता। अतः वे सत्संग, आत्म-चिन्तन, भगवच्चिन्तनका कुछ अवसर पा जाते हैं और उसके फलस्वरूप उनके लिये भगवान् और उनके नामसे जुड़ जाना सहज सम्भव होता है, जो मानव-जीवनका प्रधान कर्तव्य तथा ध्येय है। अतएव जहाँतक बने अपनी आवश्यकताओंको कम-से-कम रखो, जिससे विषय-कामनाकी अग्निसे रात-दिन मन नहीं जलेगा; कुछ समय भगवच्चिन्तनकी शीतल शान्त सम्पत्तिका सुख भी प्राप्त हो सकेगा और वही मानव-जीवनकी सफलताका साधन होगा।

पुण्यकर्ममय साधुजीवन

याद रखो—मनुष्यके मनमें जैसे विषयोंका अधिक चिन्तन होता है, जैसे विचार अधिक आते हैं, वैसे ही उसके द्वारा कर्म बनते हैं और उसीके अनुरूप उसका जीवन बन जाता है। भगवत्सम्बन्धी, सर्वभूतहितकर, त्याग, संयम, वैराग्य, तत्त्वज्ञान आदि सात्त्विक विषयोंका चिन्तन तथा वैसे ही विचार अधिक आते हैं, तो वह भागवत, भक्त, प्राणिमात्रका हित-सम्पादक, त्यागी, इन्द्रिय तथा मनपर विजय प्राप्त करनेवाला, भोगोंसे विरक्त, ज्ञानी, साधु बन जाता है; उसका जीवन शान्त तथा सुखपूर्ण रहता है और उसका मानव-जीवन अपने परम ध्येय परमात्माको प्राप्तकर सफल तथा कृतार्थ हो जाता है। इसके विपरीत जो दिन-रात इन्द्रिय-भोग, सीमित स्वार्थ, वर्धनशील भोगकामना, यथेच्छ आचरण, विषयासक्ति तथा अविवेकपूर्ण चिन्तन और विचार करता रहता है, वह जीवनभर अनन्त चिन्ता, अशान्ति, दुःख भोगता हुआ घोर विषयी, प्राणिमात्रका द्रोही, भोगोंका गुलाम, इन्द्रियों तथा मनका दास, अत्यन्त विषयासक्त, काम-क्रोध-लोभ-मोह-अभिमानके वश होकर पापकर्म करनेवाला राजस-तामसगुणयुक्त असाधु बन जाता है और मरनेके बाद आसुरी योनि तथा यन्त्रणामय नरकोंको प्राप्त होता है।

याद रखो—चिन्तन तथा विचार उन्हीं प्राणी, पदार्थ आदि विषयोंका होगा, जिनका जीवनमें अधिक संग होगा। अतएव जिससे उपर्युक्त साधु-जीवन न बनकर असाधु-जीवन बनता है, उसे कुसंग समझना चाहिये और उसका हर मूल्यपर त्याग करना चाहिये।

याद रखो—कुसंग केवल मनुष्योंका ही नहीं होता, शरीरसे

होनेवाले सभी काम, इन्द्रियोंके सारे विषय, स्थान, साहित्य, व्यापार, नौकरी, अर्थ-सम्पत्ति, खान-पान, वेश-भूषा आदि— सभी कुसंग बन सकते हैं। अतएव उस स्थानसे, उस साहित्यसे, उस व्यापार-व्यवसायसे, उस पद-अधिकारसे, उस नौकरीसे, उस धन-सम्पत्तिसे, उस खान-पानसे, उस वेश-भूषासे, उन देखने-सुनने, स्पर्श करने, चखने तथा सूँघनेके प्रत्येक पदार्थसे, उस धर्म-कर्म कहलानेवाले कामसे तथा उस मानव-समूहसे, सर्वथा बचे रहो, जो तुम्हारे जीवनको राजस-तामस-असाधु बनाता है।

याद रखो—यहाँके धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार, यश-कीर्ति आदिका कोई महत्त्व नहीं है। ये तो प्रारब्धवश असुर-राक्षसों तथा चोर-डाकुओंके पास भी हो सकते हैं। महत्त्व तो है—दैवी सम्पदाके गुणोंका। जीवनमें उन्हींका उपार्जन, सेवन तथा संवर्धन करते रहना चाहिये। धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार और यश-कीर्ति प्रचुर मात्रामें प्राप्त भी हो गये— और जीवन आसुरी सम्पदासे भरा रहा, पापकर्म होते रहे तो इन सब पदार्थोंके होनेपर भी न यहाँ शान्ति-सुख मिलेगा और न परलोकमें ही। वरं जिन आसुर-मानवोंको ये सब प्राप्त हैं, वे जिस घोर अशान्ति, दिन-रातके अन्तर्दाह, अत्यन्त चिन्ताका भोग करते हैं और आठों पहर काम, क्रोध, लोभ, अभिमानके वश होकर द्रोह, दम्भ, द्वेष, चोरी, ठगी, छिपी या खुली डकैती, परनिन्दा, पर-अनिष्टसाधन, वैर, हिंसा, ध्वंस आदि मानस तथा शारीरिक पापोंमें लगे रहते हैं, उसपर विचार करनेपर तो इस स्थितिसे बुद्धिमान् पुरुषको बड़ा भय लगता है। पर नरकके कीटकी भाँति दिन-रात ऐसे ही पतित-जीवनके प्रवाहमें पड़े हुए वे लोग इस पाप-जीवनमें गौरवका अनुभव करने लगते हैं और

इसको कर्तव्य मान लेते हैं। यह भविष्यको सर्वथा दुःख-संतापमय बनानेवाली बड़ी बुरी स्थिति है। आसुरी भोग-जगत्में प्रायः यही स्थिति है।

याद रखो—जो इन धन-दौलत, मान-सम्मानादिसे रहित हैं, पर जिनका जीवन दैवी सम्पदासे युक्त है, वे जीवनमें पवित्र कर्म करते हुए अपना तथा प्राणिमात्रका निश्चय ही यथायोग्य कल्याण-साधन करते हैं। अतएव बड़ी सावधानीके साथ ऐसा ही प्रयत्न करो, जिसमें हमारा पुण्यकर्ममय साधु-जीवन बने, जिसकी मानवके ध्येयकी सिद्धिके लिये अनिवार्य आवश्यकता है।

महात्माओंका दर्शन-संग अमोघ है

याद रखो—जिसको अपने जीवनमें सच्चे संत महापुरुषका संग प्राप्त हो चुका है, उसके समान सौभाग्यवान् और कोई नहीं है। ऋषभदेवजीने कहा है—'महापुरुषोंकी सेवा-संगति मुक्तिका और विषयकामियोंका संग नरकका द्वार है। महापुरुष वही हैं, जो समचित्त हैं, शान्त, क्रोधरहित, सबके हितचिन्तक और सदाचार-सम्पन्न हैं, जो भगवान्के प्रेमको ही एकमात्र पुरुषार्थ मानते हैं, जिनकी केवल विषयचर्चा करनेवाले लोगोंमें तथा प्राणी-परिस्थितिरूप भोग-सामग्रियोंमें अरुचि है।'

याद रखो—भगवत्प्रेमी भक्त महात्माओंके लवमात्रके सत्संगके साथ स्वर्ग और मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती, फिर संसारके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है। जडभरतजीने बतलाया कि 'महापुरुषोंकी चरणधूलिसे जबतक जीवन अभिषिक्त नहीं होता, तबतक केवल तप, यज्ञादि कर्म, दान, अतिथि-

दीनसेवा, वेदाध्ययन, देवोपासना आदि किसी भी साधनसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि महापुरुषोंके समाजमें सदा पवित्र कीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी ही चर्चा होती रहती है, वहाँ भोगचर्चा होती ही नहीं; और वह भगवत्कथा—हरिचर्चा मोक्षार्थी पुरुषकी बुद्धिको भगवान्‌में जोड़ देती है।'

याद रखो—जिन महात्माओंकी बुद्धि सर्वत्र समदर्शन करती है, जिनका हृदय पूर्णरूपसे भगवान्‌के प्रति समर्पित है, उन साधुपुरुषोंके दर्शनसे बन्धन होना वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होनेपर मनुष्यके नेत्रोंके सामने अन्धकारका होना।

याद रखो—महापुरुषोंका संग दुर्लभ अवश्य है, बड़ी चाह होनेपर भगवत्कृपासे ही प्राप्त होता है और मिलनेपर भी महात्माओंको पहचानना हमारी बुद्धिके लिये वैसे ही कठिन है, जैसे पत्थर तौलनेके बड़े तराजूपर हीरा तौलना, पर यह निश्चित है कि महात्माका दर्शन-संग अमोघ है; मनुष्यकी वृत्तिके अनुसार उसका न्यूनाधिक मंगलमय आध्यात्मिक फल अवश्य ही होगा। अतएव महात्माओंका सेवन करो, उनके कहे अनुसार दैवी सम्पत्तिकी साधना तथा भजनको बढ़ाते रहो। किसी महात्माकी न कभी निन्दा करो, न अपमान करो।

याद रखो—शवरूप जड-शरीरको आत्मा माननेवाले लोग ईर्ष्यावश महापुरुष उनकी चेष्टापर ध्यान नहीं देते; क्योंकि निन्दा नाम-रूपकी ही होती है और महापुरुष नाम-रूपसे परे होते हैं। पर महात्माओंके चरणोंकी धूलि उन लोगोंके इस अपराधको न सहकर उनके तेज-ओजको नष्ट कर देती है। महापुरुषोंकी निन्दा वास्तवमें बड़ा ही जघन्य कार्य है, जिसे दुष्टलोग किया करते हैं। श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को बताया था कि 'जो

लोग महापुरुषोंका अनादर-अपमान करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी, यश, धर्म, लोक-परलोक, विषयभोग और कल्याणके सब-के-सब साधनोंको नष्ट कर देता है।' निन्दा तो किसीकी भी न करे। पर महापुरुषोंकी निन्दा-अपमान तो कभी भूलकर भी न करे।

याद रखो—जो अपने-आपको सर्वथा मिटाकर केवल भगवान्‌के हो चुके हैं, उन भगवान्‌के जनोंमें और भगवान्‌में भेदका अभाव होता है। वे भगवान्‌के साथ घुल-मिलकर एक हो जाते हैं। अतएव उनका सेवन भगवान्‌का ही सेवन है। संत-महात्माके सेवनका अभिप्राय है—उनके द्वारा बताये हुए मार्गपर संदेहरहित तथा उत्साहयुक्त होकर अनवरत चलते रहना, उनके बताये हुए आचरणोंको जीवनमें उतारना, वैसे ही बनना, अपनी जानमें इसमें कभी जरा भी त्रुटि न होने देना। फिर भगवत्कृपासे तथा महात्माके संगके अव्यर्थ प्रभावसे सारे विघ्नोंका नाश होकर भगवान् या भगवान्‌के सुदुर्लभ दिव्य प्रेमकी प्राप्तिसे जीवन सफल हो ही जायगा।

नित्यसुखकी प्राप्तिका उपाय

याद रखो—जबतक प्रतिकूलताका अनुभव होगा, तबतक शान्ति नहीं होगी और जबतक शान्ति नहीं होगी, तबतक सुख नहीं होगा। प्रतिकूलताका अनुभव जबतक आसक्ति, कामना और ममता है, तबतक हुए बिना नहीं रहेगा। जिस प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें आसक्ति होगी, उसके विपरीत प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें प्रतिकूलता होगी। जिस वस्तुकी कामना होगी, उस वस्तुके न मिलने या उससे विपरीत वस्तु मिलनेपर प्रतिकूलता

होगी और ममताकी वस्तुके नाशकी आशंकामें भी प्रतिकूलता होगी; नाश होनेपर या उस वस्तुपर दूसरे किसीका मेरापन हो जानेपर तो प्रतिकूलता होगी ही। अतएव प्रतिकूलताका अनुभव न हो, इसके लिये किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें न राग-आसक्ति होनी चाहिये, न कामना तथा ममता; और ये सब अहंकारके रहते मिटती नहीं। अतएव अहंकारका न होना भी आवश्यक है। इसीसे गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'जो सारी कामनाओंका त्याग कर देता है, निःस्पृह आचरण करता है, ममता तथा अहंकारसे रहित होता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

याद रखो—परिणाम या फलमें समता होनेपर अनुकूलता-प्रतिकूलता नहीं रहती; अथवा प्रत्येक परिणाम या फलको अपने सुहृद् भगवान्‌का मंगल-विधान मान लेनेपर सबमें अनुकूलताका अनुभव होता है, कहीं प्रतिकूलता रहती ही नहीं—इससे शान्ति मिल जाती है। जैसे दवा मीठी हो या कड़वी, उसके सेवनसे नीरोग होनेका दृढ़ विश्वास होनेपर उसके दोनों रूपोंमें अनुकूलताका बोध होता है, कड़वी दवाका स्वाद खारा होनेपर भी उसमें प्रतिकूलताका बोध नहीं होता। डॉक्टरके द्वारा किये हुए ऑपरेशनमें दर्द होनेपर भी दुःख नहीं होता; क्योंकि उससे रोगनाशका विश्वास होनेके कारण अनुकूलताका अनुभव होता है।

याद रखो—दुःख किसी भी प्राणी-पदार्थ या परिस्थितिमें नहीं है, वह प्रतिकूलताजनित अशान्तिमें है। वही प्राणी-पदार्थ-परिस्थिति एकके लिये सुखदायक होती है और दूसरेके लिये दुःखदायक। स्वयं एकके लिये भी किसी समय सुखदायक होती है, दूसरे समय दुःखदायक। जिसके जिस समय प्रतिकूल होती

है, उसके उस समय वह अशान्ति पैदा करती है और जिसके जिस समय अनुकूल होती है, उसके उस समय शान्ति। अशान्तिमें दुःख होता है, शान्तिमें सुख। अतएव जिसको सुख चाहिये, उसको प्राप्त प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें प्रतिकूलता होनेपर भी उसे भगवान्‌का मंगल-विधान मानकर अनुकूलताका अनुभव करना चाहिये।

याद रखो—जो मनुष्य यह चाहता है कि 'मुझे सदा अनुकूल प्राणी-पदार्थ-परिस्थिति प्राप्त होते रहें और मैं सुखी रहूँ, वह सदा दुःख ही पाता रहेगा; क्योंकि प्राणी-पदार्थ-परिस्थिति सदा अनुकूल न किसीके हुए हैं, न हो सकते हैं। अतएव या तो प्रत्येक प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिको मायाजनित 'असत्' समझो, या भगवान्‌की विविध रसमयी लीला समझो या उसमें भगवान्‌के मंगल-विधानका दर्शन करो। तब अनुकूलता-ही-अनुकूलता रह जायगी और उस अनुकूलतासे शान्ति तथा शान्तिसे नित्य सुखका अनुभव होगा।'

हिंसा महापाप है

याद रखो—हिंसा तीन प्रकारसे होती है—स्वयं करे, दूसरेसे कहकर करवाये, कोई हिंसा करता हो तो उसका समर्थन करे। इसीके तीन नाम हैं—कृत, कारित और अनुमोदित। फिर वह तीन कारणोंसे होती है मनसे, वचनसे, क्रियासे—मानसिक, वाचिक, शारीरिक। मनसे किसीका भी, किसी प्रकारसे भी तथा किसी प्रकारका भी अहित-अनिष्ट, ह्रास-विनाश चाहना मानसिक हिंसा है; वाणीसे बोलकर किसीके अहित-अनिष्ट, ह्रास-विनाशकी बात कहना वाचिक हिंसा है और अपने शरीरके

द्वारा किसीका अहित-अनिष्ट, ह्रास-विनाश करना शारीरिक हिंसा है।

याद रखो—हिंसा महापाप है। जो मनुष्य मन, वाणी, शरीरसे कृत-कारित-अनुमोदित किसी भी प्रकारकी हिंसा करता है, उसे मरनेके पश्चात् बहुत लम्बे समयतक भीषण नरक-यन्त्रणाका भोग करना पड़ता है और स्थूल योनि प्राप्त होनेपर भाँति-भाँतिके स्वेच्छा, परेच्छा और अनिच्छासे प्राप्त भयानक क्लेश भोगने पड़ते हैं।

याद रखो—हममेंसे कोई भी मनुष्य अपना अहित-अनिष्ट—किसी प्रकारका भी कुछ भी नुकसान होना नहीं चाहता और यदि कोई दूसरा हमारा नुकसान करता है तो हमें बड़ा दुःख होता है, इसी प्रकार हम जब किसी दूसरेका नुकसान करते हैं तो उसे भी बड़ा दुःख होता है और हमारे मनमें जैसे हमारा नुकसान करनेवालेको उसका दण्ड मिले—ऐसी सहज इच्छा होती है, वैसे ही दूसरेके मनमें भी हमारे द्वारा उसका नुकसान होनेपर हमें भी दण्ड मिले, ऐसी इच्छा होती है। यों द्वेष, वैर, हिंसा बढ़ते रहते हैं और परिणाममें हमें भीषण दुःख भोगने पड़ते हैं। अतएव मनसे न किसीका कभी बुरा मनाओ—न चाहो; वाणीसे बोलकर कभी बुरा न करो और शरीरसे भी किसीको किसी प्रकारका जरा भी नुकसान न पहुँचाओ।

याद रखो—किसीके अनिष्ट होनेकी भगवान्से प्रार्थना करना भी हिंसा है। अतएव भगवान्से यही प्रार्थना करो कि वे हिंसक मनुष्योंकी हिंसा-वृत्तिका ही नाश कर दें; उनके हृदयमें सबकी भलाई, सबका हित तथा सबकी सेवा करनेकी इच्छा उत्पन्न कर दें।

याद रखो—श्रेष्ठ मनुष्य वही है, जो दूसरेका भला करनेके

लिये सब तरहका त्याग सहर्ष स्वीकार करता है। अतएव ऐसे श्रेष्ठ मनुष्य बनो।

याद रखो—जो लोग मांस, मछली, अंडे आदि खाते हैं, खानेका प्रचार करते हैं, इसमें लाभ मानते-बताते हैं, मांस-उत्पादनार्थ पशु-पक्षी-मत्स्य-पालन तथा उनके वधकी योजना बनाते हैं, वध करते-कराते हैं, खरीद-विक्री करते हैं, इससे आर्थिक लाभ उठाते हैं, ऐसे कार्योंको प्रोत्साहन देते हैं—वे सभी हत्यारे और हिंसक हैं; इसके फलस्वरूप उन्हें भयानक नरक-यन्त्रणा और बुरी-बुरी योनियोंमें दुःख-दुर्गति भोग करनी पड़ेगी।

याद रखो—मांस आदिके व्यापारकी तरह ही पशु-पक्षी आदि जीवोंके अंगोंका, चमड़े आदिका व्यापार करनेवाले भी उनकी हिंसामें कारण बनते हैं। दवा आदिमें प्रयोग करने तथा जाँच आदिके लिये अनुसंधानशाला बनाने-बनवानेवाले भी हिंसाके प्रत्यक्ष पापी होते हैं।

याद रखो—जो मांस खाते हैं, वे स्वयं बड़ा पाप तो करते ही हैं, उनकी बुद्धि तामसी होती है, उनको भाँति-भाँतिके रोग होते हैं। उनकी वंशपरम्परा तामसी तथा क्रमशः दुःख-यन्त्रणा भोगनेवाली बन जाती है। पापका फल तो बाध्य होकर भोगना पड़ता ही है। अतएव हिंसाकारक मांसके मानसिक-वाचिक-शारीरिक सम्पर्कसे सदा बचे रहो।

शाश्वत शान्ति केवल भगवान्‌से ही प्राप्त हो सकती है

याद रखो—प्रकृतिजनित सत्त्व-रज-तम—तीनों गुणोंमें और तीनों गुणोंवाले प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितिमें कभी शान्ति नहीं है। इनमें नित्य चंचलता है; क्योंकि ये सभी परिवर्तनशील तथा अनित्य हैं—क्षण-क्षणमें बदल रहे हैं, नित्य गतिमान् हैं, फिर इनमें शान्ति कहाँसे आती? अतएव इनसे शान्तिकी आशा रखना सर्वथा व्यर्थ है।

याद रखो—तमोगुण और रजोगुणकी अपेक्षा सत्त्वगुणमें कुछ शान्ति दिखायी देती है; पर सत्त्वगुण भी न तो कभी अकेला रह सकता है और न उसकी वृद्धि ही स्थायी रह सकती है; क्योंकि प्रकृतिका सभी कुछ परिवर्तनशील है। अतएव उससे भी शान्ति नहीं मिल सकती।

याद रखो—प्रकृतिके किसी भी प्राणी, किसी भी पदार्थ तथा किसी भी परिस्थितिमें शान्ति नहीं है। उनमें कहीं कुछ जो शान्ति दिखायी देती है, वह उन प्राणी-पदार्थोंमें नहीं है; वह है आत्मामें। किसी काम्य वस्तुके प्राप्त होनेपर एक बार चित्तकी वृत्ति कुछ स्थिर होती है, तब उसमें आत्माकी सहज शान्तिकी छाया आती है। हम उसीको भूलसे उन प्राणी-पदार्थोंसे मिली मान लेते हैं, पर वह शान्ति भी उतनी ही देर ठहरती है, जितनी देरतक दूसरी कामना नहीं उत्पन्न होती। कामना आयी कि शान्ति गयी।

याद रखो—किसी भी कामनाकी पूर्तिसे कामना मिटती नहीं, वरं बढ़ती है, वैसे ही जैसे अग्निमें ईंधन तथा घृत पड़नेपर

वह और बढ़ जाती है। प्रकृतिकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो पूर्ण हो। जितनी विशाल वस्तु होती है, उसमें उतनी अधिक अपूर्णताका बोध होता है, अभाव दिखायी देता है। जहाँ अभाव है, वहीं कामना है और जहाँ कामना है, वहीं अशान्ति है; अशान्तिमें सुख कहाँ? '**अशान्तस्य कुतः सुखम्**'। इसलिये किसी भी सांसारिक स्थितिमें—चाहे वह कितनी ही समुन्नत और धन-जन-ऐश्वर्य तथा पदाधिकार, मान-कीर्तिसे सम्पन्न हो—कभी स्थिर तथा सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। वरं उसमें अधिक अभावकी अनुभूतिसे चिन्ता तथा कामना, विनाशका भय, उस स्थितिसे ईर्ष्या-द्वेष करनेवालोंसे संघर्ष आदि अनेक नये-नये कारणोंसे अशान्ति और भी बढ़ जाती है। अतएव हमें यदि शान्ति चाहिये तो सभी कामनाओं तथा स्पृहाओंका और ममता-अहंताका त्याग करनेके लिये हम प्रयत्नशील होवें। शान्ति-प्राप्तिका एक सरल सुन्दर साधन है—सर्वलोकमहेश्वर, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ भगवान्‌के सौहार्दपर अटल विश्वास।

याद रखो—भगवान्‌के सौहार्दपर विश्वास होनेपर यह स्पष्ट अनुभव होगा कि हमारे लिये भगवान्‌ने जो कुछ भी रचा है, जो कुछ भी हमें (जागतिक दृष्टिसे अनुकूल या प्रतिकूल, सुख या दुःख, वांछनीय या अवांछनीय) प्राप्त करानेका विधान है, वह निश्चय ही परम मंगलमय है। भगवान् हमारे सुहृद् हैं, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, अतएव वे निश्चय ही हमारा जिसमें वास्तविक परम कल्याण होगा, वही विधान करेंगे।

याद रखो—शान्ति वास्तवमें वही है, जो शाश्वत है—नित्य है। ऐसी शाश्वत शान्ति नित्य—शाश्वत तत्त्वसे ही मिल सकती है। वह नित्य शाश्वत परम तत्त्व है—एकमात्र श्रीभगवान्। अतएव जिनको शान्ति चाहिये, वे उसके लिये किसी भी मानव-

प्राणीसे, किसी भी पदार्थसे, किसी भी परिस्थितिसे कोई भी आशा न रखें। जो स्वयं विक्षुब्ध, चंचल और अशान्त है, उससे हमें शान्ति कैसे मिल सकती है? शान्ति—नित्य शाश्वत यथार्थ शान्तिके लिये केवल भगवान्से ही आशा रखनी चाहिये एवं भगवान्से ही प्रार्थना करनी चाहिये।

शान्ति-सुखकी प्राप्तिके साधन

याद रखो—जबतक चित्त अशान्त है, तबतक किसी भी परिस्थितिमें वास्तविक सुख नहीं हो सकता और जबतक सांसारिक भोगोंके प्रति आकर्षण है, उनको प्राप्त करनेकी कामना है, तबतक चित्त शान्त हो नहीं सकता। गीतामें भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'जो सारी कामनाओंको छोड़ चुका है, जो निःस्पृह है, जिसकी किसी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें ममता नहीं है और जो अहंकारसे रहित है, वह शान्ति प्राप्त करता है।' अथवा 'जो सर्वयज्ञ-तपभोक्ता, सर्वलोकमहेश्वर (मुझ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्)-को प्राणिमात्रका सुहृद् जानता है अर्थात् जो भगवान्के प्रत्येक विधानको मंगलमय अनुभव करके प्रत्येक परिस्थितिमें उनके सौहार्दको देखता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।' अतएव जबतक भोगकामना है, तबतक चाहे जितनी भौतिक सम्पत्ति, समृद्धि, पद, अधिकार मिल जाय, उसे शान्ति मिल ही नहीं सकती। अग्निमें ईंधन-घी पड़नेपर उसके अधिकाधिक धधकनेकी भाँति उसकी कामनाकी अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और उसी अनुपातमें जलन या अशान्ति भी बढ़ती है।

याद रखो—यदि वास्तवमें मनुष्य सुख चाहता है तो उसे

जहाँ सुख—वास्तविक सुख है, उस स्थानपर पहुँचना होगा। वह स्थान है—नित्य एकरस सुख-स्वरूप आत्मा; और आत्मातक पहुँचनेके लिये शान्तिकी आवश्यकता है। अतएव शान्तिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। यह भी याद रखना चाहिये कि आत्मा अपना स्वरूप है, भोग प्रकृतिकी चीज है; इसलिये भोग-कामनाका त्याग, तज्जनित शान्ति और आत्माके स्वरूपकी उपलब्धि सहज है। पर मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो गयी है, तमसे ढकी हुई बुद्धि पापको पुण्य, त्याज्यको ग्राह्य, अधर्मको धर्म बतलाती है और इससे मनुष्यका जीवन दुष्प्रवृत्तिमें लग जाता है। जहाँ तामसी दुर्बुद्धि और तामसी बुद्धिजनित-कामोपभोगपरायणतायुक्त आसुरी दुष्प्रवृत्ति हो जाती है, वहाँ मनुष्यके द्वारा सभी विपरीत कर्म होते हैं और उन नीच कर्मोंके अनुसार नीच संस्कार, उनसे मानसमें नीच प्रेरणा और नीच प्रेरणासे पुनः नीच कर्म बनते जाते हैं—और जीवन सर्वथा पापमय बनकर वह पतनके गर्तमें गिर जाता है तथा विविध भाँतिकी अवांछनीय विकृतियाँ और विपत्तियाँ उसके जीवनका स्वरूप बन जाती हैं। इससे बचनेकी चेष्टा करनी है।

याद रखो—इससे बचनेके लिये बचना होगा कुसंगसे। कुसंग केवल किसी पतित मनुष्यका ही नहीं होता; स्थान, वातावरण, साहित्य, खान-पान, रहन-सहन, कपड़े-लत्ते, व्यवहार-वाणिज्य आदि सभी कुसंग हो सकते हैं। जिस स्थानमें निवास करनेसे तामसिक बुद्धि बढ़ती हो, जिस वातावरणसे भोगवासना तथा पापवासना बढ़ती हो, जिन पुस्तकों-पत्रोंके पढ़नेसे वृत्तियाँ दूषित होती हों, जिस खान-पानसे मनमें तमोगुण बढ़ता हो, जिस रहन-सहनसे भगवान्‌के प्रति अश्रद्धा तथा भोगवासना बढ़ती हो, जिन वस्त्रोंके पहननेसे भोगासक्ति उत्पन्न होती और बढ़ती हो,

जो व्यवहार-वाणिज्य या आजीविकाका साधन चोरी, हिंसाकी प्रवृत्ति तथा दूसरोंका अहित करनेवाला हो एवं जो कुछ भी देखने-सुनने, बातचीत करनेके विषय-भोगमें रुचि-आसक्ति और भगवान्‌में अरुचि पैदा करनेवाले हों, वे सभी कुसंग हैं; उनका जितना शीघ्र, जितने अंशमें त्याग किया जाय, कर देना आवश्यक है। उसके बदले सत्साहित्यका अध्ययन, सदाचारका पालन करना और शुद्ध खान-पान-वस्त्र एवं शुद्ध व्यवसाय-वाणिज्यको अपनाना चाहिये।

याद रखो—शान्ति-सुखके लिये शुद्ध कामना, शुद्ध क्रिया, शुद्ध विचार, शुद्ध इच्छा, शुद्ध दर्शन, शुद्ध श्रवण तथा शुद्ध कथन आवश्यक है। शुद्ध वही है, जिसको अपनानेसे मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त हो, प्राणिमात्रपर दया हो, मन-तन-वचनसे किसीकी हिंसा न हो, चोरी-ठगी न हो, दूसरेके हकपर मन न चले, भगवान्‌में मन लगे, भगवच्चरणोंमें राग हो, भोगोंमें वैराग्य हो और सबमें भगवान् समझकर सबको सुख पहुँचाने, सबकी सेवा करने तथा सबका हित करनेकी प्रवृत्ति एवं उत्साह हो।

शरीरका आराम और नामका नाम

याद रखो—तुम्हें जो जीवन मिला है, जीवनमें जो तन-मन मिले हैं तथा जो कुछ भी सामग्री मिली है, सब भगवान्‌की सेवामें लगानेके लिये ही मिला है। इन सबको भगवान्‌की सेवामें लगानेमें ही इनका सदुपयोग है और जो भगवान्‌की सेवामें लगाता है, वही वास्तवमें बुद्धिमान् पुरुष है।

याद रखो—इन सबको भगवान्‌में लगानेपर उनके फलस्वरूप नित्य अखण्ड अनन्त अमर दिव्य चिन्मय परमात्मसुखकी प्राप्ति होगी और भोगोंमें लगानेपर अस्थायी सुखकी और परिणामतः अनन्त असीम पतनकी, दुःखोंकी, विनाशकी और नरकोंकी प्राप्ति होगी। इस बातको ध्रुव निश्चित समझकर मनुष्यको अपने जीवनके प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक पदार्थको भगवान्‌की सेवामें ही लगाना चाहिये।

याद रखो—शरीरका आराम, नामका नाम आदि सब भोग ही हैं। यद्यपि न तो आत्मा—तुम वह शरीर है और न नाम ही। शरीरका निर्माण माता-पिताके रज-वीर्यसे गर्भमें हुआ है और जन्मके पश्चात् नामकी कल्पना होती है। मरनेके बाद भी यह शरीर तो रहता ही है और शरीरका नाम भी रहता है, पर शरीरमेंसे चेतनरूप तुम निकल जाते हो। तुम्हारे आनेसे ही शरीरमें चेतना आयी थी और तुम्हारे निकलते ही शरीर अचेतन—मुर्दा हो गया, पर मोहवश तुमने शरीर और नामको ही आत्मा—अपना स्वरूप मान लिया, इसलिये उन्हींके 'आराम' तथा 'नाम' के लिये सदा चिन्तित, चेष्टायुक्त और कर्मपरायण रहते हो। इसीके लिये नये-नये विज्ञानका आविष्कार, कार्योंका

विस्तार, विविध कला-कौशलका प्रचार, नये-नये भोगवस्तुओंके निर्माणके लिये उत्पादनगृह—कारखानोंका प्रसार तथा विविध प्रकारके अनन्त प्रयत्न करते हो और जीवनभर सफलता-असफलताके आने-जानेमें दिन-रात सुखी-दुःखी होते रहते हो। कभी भी द्वन्द्वदुःखसे मुक्त नहीं हो सकते।

याद रखो—भोग-कामनासे ग्रसित होनेके कारण ही तुम जीवनभर अशान्ति, जीवनभर चिन्ता तथा जीवनभर विभ्रान्तचित्त रहते हो—सफलतामें भी और असफलतामें भी।

याद रखो—भोग-कामना ही अनर्थोंकी अनन्त खान है। इसी कामनाकी पूर्तिके लिये पाँचों इन्द्रियोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँच विषयोंका सेवन, पद तथा अधिकारप्राप्तिके लिये प्रयत्न, धनके लिये उचित-अनुचित अथक कर्म करते रहते हो। नयी-नयी समष्टिगत तथा व्यक्तिगत विकासकी योजनाएँ, रेल, तार, सड़क, यान, मकान आदिके निर्माणमें प्रयत्न, बाधाओंको हटानेके प्रयत्नमें कलह, संघर्ष, विनाशका आश्रय लेते रहते हो। भोग-कामना असंख्य पापोंकी जननी है, अतएव भोग-कामनाकी पूर्तिके लिये तुम मन, वाणी, शरीरसे पापमूलक बुरे कर्म, मनमें अहंकार, अभिमान, ममता, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, वैर, हिंसा आदिका पोषण; वाणीसे असत्य, कटु, रूक्ष, अश्लील, अभिमानपूर्ण व्यर्थ तथा अपना-पराया अहित—अमंगल करनेवाले वचनोंका उच्चारण एवं शरीरसे हिंसा, व्यभिचार, अनाचार, अभक्ष्य भोजन-पान, मदभरी चेष्टाएँ और अन्याय तथा अधर्मयुक्त आचरण करते हो। इन सब दुष्कृतोंका कारण है तुम्हारे मिथ्या शरीरमें तथा नाममें "मैं" भावना तथा उनके 'आराम-नाम' की नित्य वर्द्धनशील कामना।

याद रखो—तुम इसी उधेड़-बुनमें—इसी अशान्ति-दुःखपूर्ण

स्थितिमें ही मर जाते हो। जीवन भगवान्‌की सेवामें नहीं लग पाता और वह व्यर्थ-अनर्थमें नष्ट हो जाता है। अतएव आजसे, अभीसे ही सावधान होकर अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको तथा शरीर, वाणी, मनकी प्रत्येक चेष्टाको भगवान्‌की—केवल भगवान्‌की सेवामें ही लगाकर जीवनको कृतार्थ तथा सफल बनाओ।